॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

सुन्दरकाण्ड

श्लोक

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम् ।

शान्त, सनातन, अप्रमेय (प्रमाणों से परे), निष्पाप, मोक्षरूप परमशान्ति देने वाले,
ब्रह्मा, शम्भु और शेषजी से निरंतर सेवित, वेदान्त के द्वारा जानने योग्य,

रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम् ॥ १॥

सर्वव्यापक, देवताओं में सबसे बड़े, माया से मनुष्य रूप में दिखने वाले समस्त पापों को हरने वाले,
करुणा की खान, रघुकुल में श्रेष्ठ तथा राजाओं के शिरोमणि राम कहलाने वाले जगदीश्वर की मैं वंदना करता हूँ ॥ १॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।

हे रघुनाथजी मैं सत्य कहता हूँ और फिर आप सबके अंतरात्मा ही है (सब जानते ही है) कि मेरे हृदय में दूसरी कोई इच्छा नहीं है।

भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥ २ ॥

हे रघुकृतश्रेष्ठ! मुझे अपनी निर्भरा (पूर्ण) भक्ति दीजिए और मेरे मन को काम आदि दोषों से रहित कीजिए ॥ २ ॥

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।

अतुत बल के धाम सोने के पर्वत (सुमेरु) के समान कान्तियुक्त शरीर वाले दैत्य रूपी वन (को ध्वंस करने) के लिए अग्नि रूप, ज्ञानियों में अग्रगण्य

सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥ ३ ॥

संपूर्ण गुणों के निधान, वानरों के स्वामी श्री रघुनाथजी के प्रिय भक्त पवनपुत्र श्री हनुमानजी को मै प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।

जाम्बवान के (सुन्दर, सुहावने) वचन सुनकर हनुमानजी को अपने मन में वे वचन बहुत अच्छे लगे॥

तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई।
सहि दुख कंद मूल फल खाई।।

और हनुमानजी ने कहा की -हे भाइयो! आप लोग कन्द, मूल व फल खाकर समय बिताना, और तब तक मेरी राह देखना, जब तक कि मैं सीताजी का पता लगाकर लौट ना आऊँ, (जब तक मै सीताजी को देखकर लौट न आऊँ)॥

जब लगि आवौं सीतहि देखी।
होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी।।

जब मै सीताजीको देखकर लौट आऊंगा,
तब कार्य सिद्ध होने पर मन को बड़ा हर्ष होगा॥

यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा।
चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा।।

यह कहकर और सबको नमस्कार करके, रामचन्द्रजी का ह्रदय में ध्यान धरकर,
प्रसन्न होकर हनुमानजी लंका जाने के लिए चले॥

सिंधु तीर एक भूधर सुंदर।
कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर।।

समुद्र के तीर पर एक सुन्दर पहाड़ था।
हनुमान् जी खेल से ही (अनायास ही, कौतुकी से) कूदकर उसके ऊपर चढ़ गए॥

बार बार रघुबीर सँभारी।
तरकेउ पवनतनय बल भारी।।

फिर वारंवार रामचन्द्रजी का स्मरण करके,
बड़े पराक्रम के साथ हनुमानजी ने गर्जना की॥

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता।
चलेउ सो गा पाताल तुरंता।।

जिस पहाड़ पर हनुमानजी ने पाँव रखे थे (जिस पर से वे उछले),
वह पहाड़ तुरंत पाताल के अन्दर चला गया॥

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना।
एही भाँति चलेउ हनुमाना।।

और जैसे श्रीरामचंद्रजी का अमोघ बाण जाता है,
ऐसे हनुमानजी वहा से लंका की ओर चले॥

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी।
तैं मैनाक होहि श्रमहारी।।

समुद्र ने हनुमानजी को श्रीराम का दूत जानकर मैनाक नाम पर्वत से कहा की -
हे मैनाक, तू इनकी थकावट दूर करने वाला हो, इनको ठहरा कर श्रम मिटानेवाला हो, (अर्थात्
अपने ऊपर इन्हे विश्राम दे)॥

[दोहा १]

हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम।।

हनुमानजी ने उसको अपने हाथसे छुआ, फिर उसको प्रणाम किया, और कहा की -
रामचन्द्रजीका का कार्य किये बिना मुझको विश्राम कहाँ? ‖

जात पवनसुत देवन्ह देखा।
जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा।।

देवताओ ने पवनपुत्र हनुमान् जी को जाते हुए देखा और
उनके बल और बुद्धि के वैभव को जानने के लिए‖

सुरसा नाम अहिन्ह कै माता।
पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता।।

देवताओं ने नाग माता सुरसा को भेजा।
उस नागमाताने आकर हनुमानजी से यह बात कही‖

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा।
सुनत बचन कह पवनकुमारा।।

आज तो मुझको देवताओं ने यह अच्छा आहार दिया।
यह बात सुन, हँस कर हनुमानजी बोले‖

राम काजु करि फिरि मैं आवौं।
सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं।।

मैं रामचन्द्रजी का काम करके लौट आऊँ और
सीताजी की खबर रामचन्द्रजी को सुना दूं‖

तब तव बदन पैठिहउँ आई।
सत्य कहउँ मोहि जान दे माई।।

फिर हे माता! मै आकर आपके मुँह में प्रवेश करूंगा।
अभी तू मुझे जाने दे। इसमें कुछ भी फर्क नहीं पड़ेगा। मै तुझे सत्य कहता हूँ‖

कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना।
ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना।।

जब सुरसा ने किसी उपायसे उनको जाने नहीं दिया,
तब हनुमानजी ने कहा कि, तू क्यों देरी करती है? तू मुझको नही खा सकती॥

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा।
कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा।।

सुरसाने अपना मुंह, एक योजनभरमें (चार कोस मे) फैलाया।
हनुमानजी ने अपना शरीर, उससे दूना यानी दो योजन विस्तारवाला किया॥

सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ।
तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ।।

सुरसा ने अपना मुँह सोलह (१६) योजनमें फैलाया।
हनुमानजीने अपना शरीर तुरंत बत्तीस (३२) योजन बड़ा किया॥

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा।
तासु दून कपि रूप देखावा।।

सुरसा ने जैसे-जैसे मुख का विस्तार बढ़ाया, जैसा जैसा मुंह फैलाया,
हनुमानजी ने वैसे ही अपना स्वरुप उससे दुगना दिखाया॥

सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा।
अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।।

जब सुरसा ने अपना मुंह सौ योजन (चार सौ कोस का) में फैलाया,
तब हनुमानजी तुरंत बहुत छोटा स्वरुप धारण कर लिया॥

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा।
मागा बिदा ताहि सिरु नावा।।

छोटा स्वरुप धारण कर हनुमानजी,
सुरसाके मुंहमें घुसकर तुरन्त बाहर निकल आए।
फिर सुरसा से विदा मांग कर हनुमानजी ने प्रणाम किया॥

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा।
बुधि बल मरमु तोर मै पावा।।

उस वक़्त सुरसा ने हनुमानजी से कहा की -
हे हनुमान! देवताओंने मुझको जिसके लिए भेजा था,
वह तुम्हारे बल और बुद्धि का भेद, मैंने अच्छी तरह पा लिया है॥

[दोहा २]

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देई गई सो हरषि चलेउ हनुमान।।

तुम बल और बुद्धि के भण्डार हो,
सो श्रीरामचंद्रजी के सब कार्य सिद्ध करोगे।
ऐसे आशीर्वाद देकर, सुरसा तो अपने घर को चली,
और हनुमानजी प्रसन्न होकर, लंकाकी ओर चले ॥

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई।
करि माया नभु के खग गहई।।

समुद्र के अन्दर एक राक्षस रहता था।
वह माया करके आकाश मे उड़ते हुए पक्षी और जंतुओको पकड़ लिया करता था॥

जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं।
जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं।।

जो जीवजन्तु आकाश में उड़कर जाता,
उसकी परछाई जल में देखकर परछाई को जल में पकड़ लेता॥

गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई।
एहि बिधि सदा गगनचर खाई।।

परछाई को जल में पकड़ लेता, जिससे वह जिव जंतु फिर वहा से सरक नहीं सकता।
इस तरह वह हमेशा, आकाश मे उड़ने वाले जिवजन्तुओ को खाया करता था॥

सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा।
तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा।।

उसने वही कपट हनुमान् जी से किया।
हनुमान् जी ने उसका वह छल तुरंत पहचान लिया॥

ताहि मारि मारुतसुत बीरा।
बारिधि पार गयउ मतिधीरा।।

धीर बुद्धिवाले पवनपुत्र वीर हनुमानजी
उसे मारकर समुद्र के पार उतर गए॥

तहाँ जाइ देखी बन सोभा।
गुंजत चंचरीक मधु लोभा।।

वहा जाकर हनुमानजी वन की शोभा देखते है कि
भँवरे मधु (पुष्प रस) के लोभसे गुंजार कर रहे है॥

नाना तरु फल फूल सुहाए।
खग मृग बृंद देखि मन भाए।।

अनेक प्रकार के वृक्ष, फल और फूलोसे शोभायमान हो रहे है।
पक्षी और हिरणोंका झुंड देखकर तो वे मन मे बहुत ही प्रसन्न हुए॥

सैल बिसाल देखि एक आगें।
ता पर धाइ चढेउ भय त्यागें।।

वहां सामने हनुमानजी एक बड़ा विशाल पर्वत देखकर,
निर्भय होकर उस पहाड़पर कूदकर चढ़ बैठे॥

उमा न कछु कपि कै अधिकाई।
प्रभु प्रताप जो कालहि खाई।।

भगवान् शंकर पार्वतीजी से कहते है कि
हे पार्वती! इसमें हनुमान की कुछ भी अधिकता नहीं है।

यह तो केवल रामचन्द्रजीके ही प्रताप का प्रभाव है कि,
जो काल को भी खा जाता है॥

गिरि पर चढि लंका तेहिं देखी।
कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी।।

पर्वत पर चढ़कर हनुमानजी ने लंका को देखा,
तो वह ऐसी बड़ी दुर्गम है की,
जिसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता॥

अति उतंग जलनिधि चहु पासा।
कनक कोट कर परम प्रकासा।।

पहले तो वह बहुत ऊँची है,
फिर उसके चारो ओर समुद्र की खाई।
उसपर भी ससोने के परकोटे (चार दीवारी) का तेज प्रकाश
कि जिससे नेत्र चकाचौंध हो जाए॥

छं० - कनक कोट बिचित्र मनि कृत
सुंदरायतना घना।

उस नगरीका रत्नों से जड़ा हुआ, सुवर्ण का कोट, अतिव सुन्दर बना हुआ है।

चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं
चारु पुर बहु बिधि बना।।

चौहटे, दुकाने व सुन्दर गलियों के बहार, उस सुन्दर नगरी के अन्दर बनी है॥

गज बाजि खच्चर निकर पदचर
रथ बरूथिन्ह को गनै।।

जहा हाथी, घोड़े, खच्चर, पैदल व रथोकी गिनती कोई नहीं कर सकता॥

बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल
सेन बरनत नहिं बनै।। १ ।।

और जहा महाबली, अद्‌भुत रूपवाले राक्षसोके सेनाके झुंड इतने है कि जिसका वर्णन किया नहीं जा सकता॥१॥

बन बाग उपबन बाटिका
सर कूप बापीं सोहहीं।

जहा वन, बाग़, बागीचे, बावडिया, तालाब, कुएँ, बावलिया शोभायमान हो रही है।

नर नाग सुर गंधर्ब कन्या
रूप मुनि मन मोहहीं।।

जहां मनुष्यकन्या, नागकन्या, देवकन्या और गन्धर्वकन्याये विराजमान हो रही है - जिनका रूप देखकर, मुनिलोगोका मन मोहित हुआ जाता है॥

कहुँ माल देह बिसाल सैल
समान अतिबल गर्जहीं।

कही पर्वत के समान बड़े विशाल देहवाले महाबलिष्ट, मल्ल गर्जना करते है और

नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि
एक एकन्ह तर्जहीं।। २ ।।

अनेक अखाड़ों में अनेक प्रकारसे भिड रहे है और एक एकको आपस में पटक पटक कर गर्जना कर रहे है॥ २ ।।

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन
नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।

जहां कही विकट शरीर वाले करोडो भट, चारो तरफसे नगरकी रक्षा करते है और

कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज
खल निसाचर भच्छहीं।।

कही वे राक्षस लोग, भैंसे, मनुष्य, गौ, गधे, बकरे और पक्षीयोंको खा रहे है॥

राक्षस लोगो का आचरण बहुत बुरा है।

एहि लागि तुलसीदास इन्ह की
कथा कछु एक है कही।

इसीलिए तुलसीदासजी कहते है कि मैंने इनकी कथा बहुत संक्षेपसे कही है।

रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि
त्यागि गति पैहहिं सही।। ३ ।।

ये महादुष्ट है, परन्तु रामचन्द्रजीके बानरूप पवित्र तीर्थनदीके अन्दर अपना शरीर त्यागकर, गति अर्थात मोक्षको प्राप्त होंगे॥३ ॥

[दोहा ३]

पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार।।

**हनुमानजी ने बहुत से रखवालो को देखकर मन में विचार किया की
मै छोटा रूप धारण करके नगर में प्रवेश करूँ ॥**

**मसक समान रूप कपि धरी।
लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।।**

**हनुमानजी मच्छर के समान छोटा-सा रूप धारण कर,
प्रभु श्री रामचन्द्रजी के नाम का सुमिरन करते हुए लंका में प्रवेश करते है॥**

**नाम लंकिनी एक निसिचरी।
सो कह चलेसि मोहि निंदरी।।**

लंकिनी, हनुमानजी का रास्ता रोकती है

**लंका के द्वार पर लंकिनी नाम की एक राक्षसी रहती थी। हनुमानजी की भेंट, उस लंकिनी राक्षसी से होती है। वह पूछती है कि,
मेरा निरादर करके (बिना मुझसे पूछे) कहा जा रहे हो?**

**जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा।
मोर अहार जहाँ लगि चोरा।।**

तूने मेरा भेद नहीं जाना?
जहाँ तक चोर हैं, वे सब मेरे आहार हैं॥

मुठिका एक महा कपि हनी।
रुधिर बमत धरनीं ढनमनी।।

महाकपि हनुमानजी उसे एक घूँसा मारते है,
जिससे वह पृथ्वी पर लुढक पड़ती है॥

पुनि संभारि उठी सो लंका।
जोरि पानि कर बिनय ससंका।।

वह राक्षसी लंकिनी, अपने को सँभालकर फिर उठती है।
और डर के मारे हाथ जोड़कर हनुमानजी से कहती है॥

जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा।
चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा।।

लंकिनी, हनुमानजी को, ब्रह्माजी के वरदान के बारे में बताती है
जब ब्रह्मा ने रावण को वर दिया था,
तब चलते समय उन्होंने राक्षसों के विनाश की यह पहचान मुझे बता दी थी कि॥

बिकल होसि तैं कपि कें मारे।
तब जानेसु निसिचर संघारे।।

जब तू बंदर के मारने से व्याकुल हो जाए,
तब तू राक्षसों का संहार हुआ जान लेना।

तात मोर अति पुन्य बहूता।
देखेउँ नयन राम कर दूता।।

हनुमानजी के दर्शन होने के कारण, लंकिनी खुदको भाग्यशाली समझती है
हे तात! मेरे बड़े पुण्य हैं,
जो मैं श्री रामजी के दूत को अपनी आँखों से देख पाई॥

[दोहा ४]

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।

हे तात!, स्वर्ग और मोक्ष के सब सुखों को
तराजू के एक पलड़े में रखा जाए,
तो भी वे सब मिलकर (दूसरे पलड़े पर रखे हुए)
उस सुख के बराबर नहीं हो सकते,
जो क्षण मात्र के सत्संग से होता है॥

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा।
हृदयँ राखि कौसलपुर राजा।।

अयोध्यापुरी के राजा रघुनाथ को हृदय में रखे हुए
नगर में प्रवेश करके सब काम कीजिए॥

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई।
गोपद सिंधु अनल सितलाई।।

उसके लिए, अर्थात, जिसके मन में श्री राम का स्मरण रहता है,
विष अमृत हो जाता है,
शत्रु मित्रता करने लगते हैं,
समुद्र गाय के खुर के बराबर हो जाता है,
अग्नि में शीतलता आ जाती है॥

गरुड़ सुमेरु रेनू सम ताही।
राम कृपा करि चितवा जाही।।

और हे गरुड़जी! जिसे राम ने एक बार कृपा करके देख लिया,
उसके लिए सुमेरु पर्वत रज के समान हो जाता है॥

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना।
पैठा नगर सुमिरि भगवाना।।

तब हनुमानजी ने बहुत ही छोटा रूप धारण किया,
और भगवान का स्मरण करके नगर में प्रवेश किया॥

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा।
देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।।

उन्होंने एक-एक (प्रत्येक) महल की खोज की।
जहाँ-तहाँ असंख्य योद्धा देखे॥

गयउ दसानन मंदिर माहीं।
अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं।।

फिर वे रावण के महल में गए।
वह अत्यंत विचित्र था, जिसका वर्णन नहीं हो सकता॥

सयन किए देखा कपि तेही।
मंदिर महुँ न दीखि बैदेही।।

हनुमानजी ने, महल में रावण को सोया हुआ देखा।
वहां भी हनुमानजी ने सीताजी की खोज की,
परन्तु सीताजी उस महल में कही भी दिखाई नहीं दीं॥

भवन एक पुनि दीख सुहावा।
हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा।।

फिर उन्हें एक सुंदर महल दिखाई दिया।
उस महल में भगवान का एक मंदिर बना हुआ था॥

[दोहा ५]

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरषि कपिराइ।।

वह महल श्री राम के आयुध (धनुष-बाण) के चिह्नों से अंकित था,
उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती॥
वहाँ नवीन-नवीन तुलसी के वृक्ष-समूहों को देखकर
कपिराज हनुमान हर्षित हुए॥

लंका निसिचर निकर निवासा।
इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।

और उन्हीने सोचा की यह लंका नगरी तो राक्षसोंके कुलकी निवासभूमी है,
राक्षसो के समूह का निवास स्थान है।
यहाँ सत्पुरुषो के रहने का क्या काम॥

मन महुँ तरक करै कपि लागा।
तेहीं समय बिभीषनु जागा।।

इस तरह हनुमानजी मन ही मन में विचार करने लगे।
इतने में विभीषण की आँख खुली॥

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा।
हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा।।

और जागते ही उन्होंने - राम! राम! - ऐसा स्मरण किया,
तो हनुमानजीने जाना की यह कोई सत्पुरुष है।
इस बात से हनुमानजीको बड़ा आनंद हुआ॥

एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी।
साधु ते होइ न कारज हानी।।

सत्पुरुषों से क्यों पहचान करनी चाहिये?हनुमानजीने विचार किया कि
इनसे जरूर पहचान करनी चहिये,
क्योंकि सत्पुरुषोके हाथ कभी कार्यकी हानि नहीं होती,
बल्कि लाभ ही होता है॥

बिप्र रुप धरि बचन सुनाए।
सुनत बिभीषण उठि तहँ आए।।

फिर हनुमानजीने ब्राम्हणका रूप धरकर वचन सुनाया,
तो वह वचन सुनतेही विभीषण उठकर उनके पास आया॥

करि प्रनाम पूँछी कुसलाई।
बिप्र कहहु निज कथा बुझाई।।

और प्रणाम करके कुशल पूँछा कि,
हे ब्राह्मणदेव!, जो आपकी बात हो सो हमें समझाकर कहो
(अपनी कथा समझाकर कहिए)॥

की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई।
मोरें हृदय प्रीति अति होई।।

विभीषणने कहा कि, क्या आप हरिभक्तो मे से कोई है?
क्योंकि मेरे मनमें आपकी ओर बहुत प्रीती बढती जाती है,
आपको देखकर मेरे हृदय मे अत्यंत प्रेम उमड़ रहा है॥

की तुम्ह रामु दीन अनुरागी।
आयहु मोहि करन बड़भागी।।

अथवा मुझको बडभागी करने के वास्ते,
भक्तोपर अनुराग रखनेवाले आप साक्षात दिनबन्धु ही तो नहीं पधार गए हो॥
(अथवा क्या आप दीनो से प्रेम करने वाले स्वयं श्री राम जी ही है, जो मुझे बड़भागी बनाने,
घर-बैठे दर्शन देकर कृतार्थ करने आए है?)

[दोहा ६]

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम।।

विभिषणके ये वचन सुनकर
हनुमानजीने रामचन्द्रजीकी सब कथा विभीषणसे कही,
और अपना नाम बताया।
प्रभु राम के नाम स्मरण से, दोनों के मन आनंदित हो जाते है
परस्परकी बाते सुनतेही दोनोंके शरीर रोमांचित हो गए और श्री रामचन्द्रजीका स्मरण आ
जानेसे दोनों आनंदमग्न हो गए ॥

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी।
जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी।।

विभीषण कहते है की -हे हनुमानजी! हमारी रहनी हम कहते है सो सुनो।
जैसे दांतों के बिचमें बिचारी जीभ रहती है, ऐसे हम इन राक्षसोंके बिच में रहते है॥

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा।
करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा।।

हे तात! वे सूर्यकुल के नाथ (रघुनाथ),
मुझको अनाथ जानकर कभी कृपा करेंगे?

तामस तनु कछु साधन नाहीं।
प्रीति न पद सरोज मन माहीं।।

मेरा तामसी (राक्षस) शरीर होने से साधन तो कुछ बनता नहीं
और न मन में श्री रामचंद्रजी के चरणकमलों में प्रेम ही है॥

अब मोहि भा भरोस हनुमंता।
बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता।।

परंतु हे हनुमान्‌ ! अब मुझे विश्वास हो गया कि श्री रामजी की मुझ पर कृपा है,
क्योंकि हरि की कृपा के बिना संत नहीं मिलते॥

जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा।
तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा।।

जब श्री रघुवीर ने कृपा की है,
तभी तो आपने मुझे हठ करके (अपनी ओर से) दर्शन दिए हैं॥

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती।
करहिं सदा सेवक पर प्रीती।।

हनुमान्‌ जी ने कहा-हे विभीषणजी! सुनिए, प्रभु की यही रीति है कि
वे सेवक पर सदा ही प्रेम किया करते हैं॥

कहहु कवन मैं परम कुलीना।
कपि चंचल सबहीं बिधि हीना।।

भला कहिए, मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूँ?
(जाति का) चंचल वानर हूँ और सब प्रकार से नीच हूँ॥

प्रात लेइ जो नाम हमारा।
तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा।।

प्रातःकाल जो हम लोगों (बंदरों) का नाम ले ले
तो उस दिन उसे भोजन न मिले॥

[दोहा ७]

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर।।

हे सखा! सुनिए, मैं ऐसा अधम हूँ, पर श्री रामचंद्रजी ने तो मुझ पर भी कृपा ही की है। भगवान् के गुणों का स्मरण करके हनुमान् जी के दोनों नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया॥

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी।
फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी।।

जो जानते हुए भी ऐसे स्वामी (श्री रघुनाथजी) को भुलाकर
(विषयों के पीछे) भटकते फिरते हैं, वे दुःखी क्यों न हों?

एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा।
पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा।।

इस प्रकार श्री रामजी के गुण समूहों को कहते हुए
उन्होंने अनिर्वचनीय (परम) शांति प्राप्त की॥

पुनि सब कथा बिभीषन कही।
जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही।।

फिर विभीषण ने हनुमानजी से वह सब कथा कही कि
श्री जानकीजी जिस प्रकार वहाँ (लंका में) रहती थीं।

तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता।
देखी चहउँ जानकी माता।।

तब हनुमान् जी ने कहा- हे भाई सुनो,
मैं जानकी माता को देखता चाहता हूँ॥

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई।
चलेउ पवनसुत बिदा कराई।।

विभीषणजी ने (माता के दर्शन की) सब युक्तियाँ (उपाय) कह सुनाईं।
तब हनुमान् जी विदा लेकर चले।

करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ।
बन असोक सीता रह जहवाँ।।

फिर वही (पहले का मसक सरीखा) रूप धरकर वहाँ गए,
जहाँ अशोक वन में (वन के जिस भाग में) सीताजी रहती थीं॥

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा।
बैठेहिं बीति जात निसि जामा।।

सीताजी को देखकर हनुमान् जी ने उन्हें मन ही में प्रणाम किया।
उन्हें बैठे ही बैठे रात्रि के चारों पहर बीत जाते हैं।

कृस तन सीस जटा एक बेनी।
जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी।।

हनुमानजी सीताजी को देखते है, उनका शरीर तो दुबला हो गया है, सिर पर जटाओं की एक वेणी (लट) है।
हृदय में श्री रघुनाथजी के गुण समूहों का जाप (स्मरण) करती रहती हैं॥

[दोहा ८]

निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन।।

श्री जानकीजी नेत्रों को अपने चरणों में लगाए हुए हैं (नीचे की ओर देख रही हैं) और मन श्री रामजी के चरण कमलों में लीन है।
जानकीजी को दीन (दुःखी) देखकर पवनपुत्र हनुमान् जी बहुत ही दुःखी हुए॥

तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई।
करइ बिचार करौं का भाई।।

हनुमान् जी वृक्ष के पत्तों में छिप रहे
और विचार करने लगे कि हे भाई! क्या करूँ (इनका दुःख कैसे दूर करूँ)?

तेहि अवसर रावनु तहँ आवा।
संग नारि बहु किएँ बनावा।।

उसी समय बहुतसी स्त्रियोंको संग लिए रावण वहाँ आया।
जो स्त्रिया रावणके संग थी, वे बहुत प्रकार के गहनों से बनी ठनी थी॥

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा।
साम दान भय भेद देखावा।।

उस दुष्ट ने सीताजी को बहुत प्रकार से समझाया।
साम, दान, भय और भेद दिखलाया॥

कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी।
मंदोदरी आदि सब रानी।।

रावण ने कहा- हे सुमुखि! हे सयानी! सुनो! मंदोदरी आदि सब रानियों को-॥

तव अनुचरीं करउँ पन मोरा।
एक बार बिलोकु मम ओरा।।

मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा, यह मेरा प्रण है।
तुम एक बार मेरी ओर देखो तो सही!

तृन धरि ओट कहति बैदेही।
सुमिरि अवधपति परम सनेही।।

पने परम स्नेही कोसलाधीश श्री रामचंद्रजी का स्मरण करके
जानकीजी तिनके की आड़ (परदा) करके कहने लगीं-॥

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा।
कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा।।

हे दशमुख! सुन, जुगनू के प्रकाश से
कभी कमलिनी खिल सकती है?

अस मन समुझु कहति जानकी।
खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।।

जानकीजी फिर कहती हैं- तू (अपने लिए भी) ऐसा ही मन में समझ ले।
रे दुष्ट! तुझे श्री रघुवीर के बाण की खबर नहीं है॥

सठ सूनें हरि आनेहि मोहि।
अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।।

रे पापी! तू मुझे सूने में हर लाया है।
रे अधम! निर्लज्ज! तुझे लज्जा नहीं आती?॥

[दोहा ९]

आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन।।

अपने को जुगनू के समान और रामचंद्रजी को सूर्य के समान सुनकर
और सीताजी के कठोर वचनों को सुनकर रावण तलवार निकालकर बड़े गुस्से में आकर बोला-
॥

सीता तैं मम कृत अपमाना।
कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना।।

सीता! तूने मेरा अपनाम किया है।
मैं तेरा सिर इस कठोर कृपाण से काट डालूँगा।

नाहिं त सपदि मानु मम बानी।
सुमुखि होति न त जीवन हानी।।

नहीं तो (अब भी) जल्दी मेरी बात मान ले।
हे सुमुखि! नहीं तो जीवन से हाथ धोना पड़ेगा॥

स्याम सरोज दाम सम सुंदर।
प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।।

सीताजी ने कहा- हे दशग्रीव! प्रभु की भुजा जो श्याम कमल की माला के समान सुंदर और हाथी की सूँड के समान (पुष्ट तथा विशाल) है,

सो भुज कंठ कि तव असि घोरा।
सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।।

या तो वह भुजा ही मेरे कंठ में पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ही।
रे शठ! सुन, यही मेरा सच्चा प्रण है॥

चंद्रहास हरु मम परितापं।
रघुपति बिरह अनल संजातं।।

सीताजी कहती हैं- हे चंद्रहास (तलवार)!
श्री रघुनाथजी के विरह की अग्नि से उत्पन्न मेरी बड़ी भारी जलन को तू हर ले,

सीतल निसित बहसि बर धारा।
कह सीता हरु मम दुख भारा।।

हे तलवार! तू शीतल, तीव्र और श्रेष्ठ धारा बहाती है (अर्थात्‌ तेरी धारा ठंडी और तेज है),
तू मेरे दुःख के बोझ को हर ले॥

सुनत बचन पुनि मारन धावा।
मयतनयाँ कहि नीति बुझावा।।

सीताजी के ये वचन सुनते ही वह मारने दौड़ा।
तब मय दानव की पुत्री मन्दोदरी ने नीति कहकर उसे समझाया।

कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई।
सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई।।

तब रावण ने सब दासियों को बुलाकर कहा कि
जाकर सीता को बहुत प्रकार से भय दिखलाओ॥

मास दिवस महुँ कहा न माना।
तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना।।

यदि महीने भर में यह कहा न माने
तो मैं इसे तलवार निकालकर मार डालूँगा॥

[दोहा १०]

भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद।
सीतहि त्रास देखावहि धरहिं रूप बहु मंद।।

(यों कहकर) रावण घर चला गया।
यहाँ राक्षसियों के समूह बहुत से बुरे रूप धरकर सीताजी को भय दिखलाने लगे॥

त्रिजटा नाम राच्छसी एका।
राम चरन रति निपुन बिबेका।।

उनमें एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी।
उसकी श्री रामचंद्रजी के चरणों में प्रीति थी और वह विवेक (ज्ञान) में निपुण थी।

सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना।
सीतहि सेइ करहु हित अपना।।

सने सबों को बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया और कहा-
सीताजी की सेवा करके अपना कल्याण कर लो॥

सपनें बानर लंका जारी।
जातुधान सेना सब मारी।।

स्वप्न (मैंने देखा कि) एक बंदर ने लंका जला दी।
राक्षसों की सारी सेना मार डाली गई।

खर आरूढ़ नगन दससीसा।
मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।।

रावण नंगा है और गदहे पर सवार है।
उसके सिर मुँडे हुए हैं, बीसों भुजाएँ कटी हुई हैं॥

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई।
लंका मनहुँ बिभीषन पाई।।

इस प्रकार से वह दक्षिण (यमपुरी की) दिशा को जा रहा है
और मानो लंका विभीषण ने पाई है।

नगर फिरी रघुबीर दोहाई।
तब प्रभु सीता बोलि पठाई।।

नगर में श्री रामचंद्रजी की दुहाई फिर गई।
तब प्रभु ने सीताजी को बुला भेजा॥

यह सपना में कहउँ पुकारी।
होइहि सत्य गएँ दिन चारी।।

मैं पुकारकर (निश्चय के साथ) कहती हूँ कि
यह स्वप्न चार (कुछ ही) दिनों बाद सत्य होकर रहेगा॥

तासु बचन सुनि ते सब डरीं।
जनकसुता के चरनन्हि परीं।।

उसके वचन सुनकर वे सब राक्षसियाँ डर गईं
और जानकीजी के चरणों पर गिर पड़ीं॥

[दोहा ११]

जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच।।

तब (इसके बाद) वे सब जहाँ-तहाँ चली गईं। सीताजी मन में सोच करने लगीं कि एक महीना बीत जाने पर नीच राक्षस रावण मुझे मारेगा॥

त्रिजटा सन बोली कर जोरी।
मातु बिपति संगिनि तैं मोरी।।

सीताजी हाथ जोड़कर त्रिजटा से बोलीं-
हे माता! तू मेरी विपत्ति की संगिनी है।

तजौं देह करु बेगि उपाई।
दुसहु बिरहु अब नहिं सहि जाई।।

जल्दी कोई ऐसा उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सकूँ।
विरह असह्म हो चला है, अब यह सहा नहीं जाता॥

आनि काठ रचु चिता बनाई।
मातु अनल पुनि देहि लगाई।।

काठ लाकर चिता बनाकर सजा दे।
हे माता! फिर उसमें आग लगा दे।

सत्य करहि मम प्रीति सयानी।
सुनै को श्रवन सूल सम बानी।।

हे सयानी! तू मेरी प्रीति को सत्य कर दे।
रावण की शूल के समान दुःख देने वाली वाणी कानों से कौन सुने?

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि।
प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि।।

सीताजी के वचन सुनकर त्रिजटा ने चरण पकड़कर उन्हें समझाया
और प्रभु का प्रताप, बल और सुयश सुनाया।

निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी।
अस कहि सो निज भवन सिधारी।।

उसने कहा- हे सुकुमारी! सुनो रात्रि के समय आग नहीं मिलेगी।
ऐसा कहकर वह अपने घर चली गई॥

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला।
मिलहि न पावक मिटिहि न सूला।।

सीताजी (मन ही मन) कहने लगीं- (क्या करूँ) विधाता ही विपरीत हो गया।
न आग मिलेगी, न पीड़ा मिटेगी।

देखिअत प्रगट गगन अंगारा।
अवनि न आवत एकउ तारा।।

आकाश में अंगारे प्रकट दिखाई दे रहे हैं,
पर पृथ्वी पर एक भी तारा नहीं आता॥

पावकमय ससि स्त्रवत न आगी।
मानहुँ मोहि जानि हतभागी।।

चंद्रमा अग्निमय है,
किंतु वह भी मानो मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं बरसाता।

सुनहि बिनय मम बिटप असोका।
सत्य नाम करु हरु मम सोका।।

हे अशोक वृक्ष! मेरी विनती सुन।
मेरा शोक हर ले और अपना (अशोक) नाम सत्य कर॥

नूतन किसलय अनल समाना।
देहि अगिनि जनि करहि निदाना।।

तेरे नए-नए कोमल पत्ते अग्नि के समान हैं।
अग्नि दे, विरह रोग का अंत मत कर (अर्थात् विरह रोग को बढ़ाकर सीमा तक न पहुँचा)

देखि परम बिरहाकुल सीता।
सो छन कपिहि कलप सम बीता।।

सीताजी को विरह से परम व्याकुल देखकर
वह क्षण हनुमान्‌जी को कल्प के समान बीता॥

[सोरठा १२]

कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारी तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ।।

तब हनुमान्‌जी ने हदय में विचार कर (सीताजी के सामने) अँगूठी डाल दी,
मानो अशोक ने अंगारा दे दिया।
(यह समझकर) सीताजी ने हर्षित होकर उठकर उसे हाथ में ले लिया॥

तब देखी मुद्रिका मनोहर।
राम नाम अंकित अति सुंदर।।

तब उन्होंने राम-नाम से अंकित अत्यंत सुंदर
एवं मनोहर अँगूठी देखी।

चकित चितव मुदरी पहिचानी।
हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी।।

अँगूठी को पहचानकर सीताजी आश्चर्यचकित होकर उसे देखने लगीं
और हर्ष तथा विषाद से हृदय में अकुला उठीं॥

जीति को सकइ अजय रघुराई।
माया तें असि रचि नहिं जाई।।

वे सोचने लगीं- श्री रघुनाथजी तो सर्वथा अजेय हैं, उन्हें कौन जीत सकता है?
और माया से ऐसी (माया के उपादान से सर्वथा रहित दिव्य, चिन्मय) अँगूठी बनाई नहीं जा सकती।

सीता मन बिचार कर नाना।
मधुर बचन बोलेउ हनुमाना।।

सीताजी मन में अनेक प्रकार के विचार कर रही थीं।
इसी समय हनुमान्‌जी मधुर वचन बोले-॥

रामचंद्र गुन बरनैं लागा।
सुनतहिं सीता कर दुख भागा।।

वे श्री रामचंद्रजी के गुणों का वर्णन करने लगे,
(जिनके) सुनते ही सीताजी का दुःख भाग गया।

लागीं सुनैं श्रवन मन लाई।
आदिहु तें सब कथा सुनाई।।

वे कान और मन लगाकर उन्हें सुनने लगीं।
हनुमान्‌जी ने आदि से लेकर अब तक की सारी कथा कह सुनाई॥

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई।
कहि सो प्रगट होति किन भाई।।

सीताजी बोलीं- जिसने कानों के लिए अमृत रूप यह सुंदर कथा कही,
वह हे भाई! प्रकट क्यों नहीं होता?

तब हनुमंत निकट चलि गयऊ।
फिरि बैंठीं मन बिसमय भयऊ।।

तब हनुमान्‌जी पास चले गए।
उन्हें देखकर सीताजी फिरकर (मुख फेरकर) बैठ गईं?
उनके मन में आश्चर्य हुआ॥

राम दूत मैं मातु जानकी।
सत्य सपथ करुनानिधान की।।

हनुमान्‌जी ने कहा- हे माता जानकी मैं श्री रामजी का दूत हूँ।
करुणानिधान की सच्ची शपथ करता हूँ,

यह मुद्रिका मातु मैं आनी।
दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी।।

हे माता! यह अँगूठी मैं ही लाया हूँ।
श्री रामजी ने मुझे आपके लिए यह सहिदानी (निशानी या पहिचान) दी है॥

नर बानरहि संग कहु कैसें।
कहि कथा भइ संगति जैसें।।

सीताजी ने पूछा- नर और वानर का संग कहो कैसे हुआ?
तब हनुमानजी ने जैसे संग हुआ था, वह सब कथा कही॥

[दोहा १३]

कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास।।

हनुमान्‌जी के प्रेमयक्त वचन सुनकर सीताजी के मन में विश्वास उत्पन्न हो गया,
उन्होंने जान लिया कि यह मन, वचन और कर्म से कृपासागर श्री रघुनाथजी का दास है॥

हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी।
सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी।।

भगवान का जन (सेवक) जानकर अत्यंत गाढ़ी प्रीति हो गई।
नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया और शरीर अत्यंत पुलकित हो गया

बूड़त बिरह जलधि हनुमाना।
भयउ तात मों कहुँ जलजाना।।

सीताजी ने कहा - हे तात हनुमान्! विरहसागर में डूबती हुई
मुझको तुम जहाज हुए॥

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी।
अनुज सहित सुख भवन खरारी।।

मैं बलिहारी जाती हूँ,
अब छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित खर के शत्रु सुखधाम प्रभु का कुशल-मंगल कहो।

कोमलचित कृपाल रघुराई।
कपि केहि हेतु धरी निठुराई।।

श्री रघुनाथजी तो कोमल हृदय और कृपालु हैं।
फिर हे हनुमान्! उन्होंने किस कारण यह निष्ठुरता धारण कर ली है?॥

सहज बानि सेवक सुखदायक।
कबहुँक सुरति करत रघुनायक।।

सेवक को सुख देना उनकी स्वाभाविक बान है।
वे श्री रघुनाथजी क्या कभी मेरी भी याद करते हैं?

कबहुँ नयन मम सीतल ताता।
होइहहि निरखि स्याम मृदु गाता।।

हे तात! क्या कभी उनके कोमल साँवले अंगों को देखकर
मेरे नेत्र शीतल होंगे?॥

बचनु न आव नयन भरे बारी।
अहह नाथ हौं निपट बिसारी।।

(मुँह से) वचन नहीं निकलता, नेत्रों में (विरह के आँसुओं का) जल भर आया।
(बड़े दुःख से वे बोलीं-) हा नाथ! आपने मुझे बिलकुल ही भुला दिया!

देखि परम बिरहाकुल सीता।
बोला कपि मृदु बचन बिनीता।।

सीताजी को विरह से परम व्याकुल देखकर
हनुमान्‌जी कोमल और विनीत वचन बोले- ॥

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता।
तव दुख दुखी सुकृपा निकेता।।

हे माता! सुंदर कृपा के धाम प्रभु भाई लक्ष्मणजी के सहित (शरीर से) कुशल हैं,
परंतु आपके दुःख से दुःखी हैं।

जनि जननी मानहु जियँ ऊना।
तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना।।

हे माता! मन में ग्लानि न मानिए (मन छोटा करके दुःख न कीजिए)।
श्री रामचंद्रजी के हृदय में आपसे दूना प्रेम है॥

[दोहा १४]

रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गद गद भयउ भरे बिलोचन नीर।।

हे माता! अब धीरज धरकर श्री रघुनाथजी का संदेश सुनिए।
ऐसा कहकर हनुमान्‌जी प्रेम से गद्‌गद हो गए। उनके नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया॥

कहेउ राम बियोग तव सीता।
मो कहुँ सकल भए बिपरीता।।

हनुमान्‌जी बोले-श्री रामचंद्रजी ने कहा है कि हे सीते! तुम्हारे वियोग में
मेरे लिए सभी पदार्थ प्रतिकूल हो गए हैं।

नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू।
कालनिसा सम निसि ससि भानू।।

वृक्षों के नए-नए कोमल पत्ते मानो अग्नि के समान,
रात्रि कालरात्रि के समान, चंद्रमा सूर्य के समान॥

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा।
बारिद तपत तेल जनु बरिसा।।

और कमलों के वन भालों के वन के समान हो गए हैं।
मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते हैं।

जे हित रहे करत तेइ पीरा।
उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा।।

जो हित करने वाले थे, वे ही अब पीड़ा देने लगे हैं।
त्रिविध (शीतल, मंद, सुगंध) वायु साँप के श्वास के समान (जहरीली और गरम) हो गई है॥

कहेहू तें कछु दुख घटि होई।
काहि कहौं यह जान न कोई।।

मन का दुःख कह डालने से भी कुछ घट जाता है।
पर कहूँ किससे? यह दुःख कोई जानता नहीं।

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एकु मनु मोरा।।

हे प्रिये! मेरे और तेरे प्रेम का तत्त्व (रहस्य)
एक मेरा मन ही जानता है॥

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं।
जानु प्रीति रसु एतेनहि माहीं।।

और वह मन सदा तेरे ही पास रहता है।
बस, मेरे प्रेम का सार इतने में ही समझ ले।

प्रभु संदेसु सुनत बैदेही।
मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही।।

प्रभु का संदेश सुनते ही जानकीजी प्रेम में मग्न हो गईं।
उन्हें शरीर की सुध न रही॥

कह कपि हृदयँ धीर धरु माता।
सुमिरु राम सेवक सुखदाता।।

हनुमान्‌जी ने कहा-हे माता! हृदय में धैर्य धारण करो
और सेवकों को सुख देने वाले श्री रामजी का स्मरण करो।

उर आनहु रघुपति प्रभुताई।
सुनि मम बचन तजहु कदराई।।

श्री रघुनाथजी की प्रभुता को हृदय में लाओ
और मेरे वचन सुनकर कायरता छोड़ दो॥

[दोहा १५]

निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु।।

राक्षसों के समूह पतंगों के समान और श्री रघुनाथजी के बाण अग्नि के समान हैं।
हे माता! हृदय में धैर्य धारण करो और राक्षसों को जला ही समझो॥

जौं रघुबीर होति सुधि पाई।
करते नहिं बिलंबु रघुराई।।

श्री रामचंद्रजी ने यदि खबर पाई होती
तो वे बिलंब न करते।

रामबान रबि उएँ जानकी।
तम बरूथ कहँ जातुधान की।।

हे जानकीजी! रामबाण रूपी सूर्य के उदय होने पर
राक्षसों की सेना रूपी अंधकार कहाँ रह सकता है?॥

अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई।
प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई।।

हे माता! मैं आपको अभी यहाँ से लिवा जाऊँ,
पर श्री रामचंद्रजी की शपथ है, मुझे प्रभु (उन) की आज्ञा नहीं है।

कछुक दिवस जननी धरु धीरा।
कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा।।

(अतः) हे माता! कुछ दिन और धीरज धरो।
श्री रामचंद्रजी वानरों सहित यहाँ आएँगे॥

निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं।
तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं।।

और राक्षसों को मारकर आपको ले जाएँगे।
नारद आदि (ऋषि-मुनि) तीनों लोकों में उनका यश गाएँगे।

हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना।
जातुधान अति भट बलवाना।।

सीताजी ने कहा- हे पुत्र! सब वानर तुम्हारे ही समान (नन्हें-नन्हें से) होंगे,
राक्षस तो बड़े बलवान, योद्धा हैं॥

मोरें हृदय परम संदेहा।
सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा।।

अतः मेरे हृदय में बड़ा भारी संदेह होता है (कि तुम जैसे बंदर राक्षसों को कैसे जीतेंगे!)।
यह सुनकर हनुमान्‌जी ने अपना शरीर प्रकट किया।

कनक भूधराकार सरीरा।
समर भयंकर अतिबल बीरा।।

सोने के पर्वत (सुमेरु) के आकार का (अत्यंत विशाल) शरीर था,
जो युद्ध में शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न करने वाला, अत्यंत बलवान्‌ और वीर था॥

सीता मन भरोस तब भयऊ।
पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ।।

तब (उसे देखकर) सीताजी के मन में विश्वास हुआ।
हनुमान्‌जी ने फिर छोटा रूप धारण कर लिया॥

[दोहा १६]

सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल।।

हे माता! सुनो, वानरों में बहुत बल-बुद्धि नहीं होती,
परंतु प्रभु के प्रताप से बहुत छोटा सर्प भी गरुड़ को खा सकता है।
(अत्यंत निर्बल भी महान्‌ बलवान्‌ को मार सकता है)॥

मन संतोष सुनत कपि बानी।
भगति प्रताप तेज बल सानी।।

भक्ति, प्रताप, तेज और बल से सनी हुई हनुमान्‌जी की वाणी सुनकर
सीताजी के मन में संतोष हुआ।

आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना।
होहु तात बल सील निधाना।।

उन्होंने श्री रामजी के प्रिय जानकर हनुमान्‌जी को आशीर्वाद दिया कि
हे तात! तुम बल और शील के निधान होओ॥

अजर अमर गुननिधि सुत होहू।
करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।।

हे पुत्र! तुम अजर (बुढ़ापे से रहित), अमर और गुणों के खजाने होओ।
श्री रघुनाथजी तुम पर बहुत कृपा करें।

करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना।
निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।।

'प्रभु कृपा करें' ऐसा कानों से सुनते ही
हनुमान्‌जी पूर्ण प्रेम में मग्न हो गए॥

बार बार नाएसि पद सीसा।
बोला बचन जोरि कर कीसा।।

हनुमान्‌जी ने बार-बार सीताजी के चरणों में सिर नवाया
और फिर हाथ जोड़कर कहा-

अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता।
आसिष तव अमोघ बिख्याता।।

हे माता! अब मैं कृतार्थ हो गया।
आपका आशीर्वाद अमोघ (अचूक) है, यह बात प्रसिद्ध है॥

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा।
लागि देखि सुंदर फल रूखा।।

हे माता! सुनो, सुंदर फल वाले वृक्षों को देखकर
मुझे बड़ी ही भूख लग आई है।

सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी।
परम सुभट रजनीचर भारी।।

सीताजी ने कहा-हे बेटा! सुनो, बड़े भारी योद्धा राक्षस
इस वन की रखवाली करते हैं॥

तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं।
जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं।।

हनुमान्‌जी ने कहा-हे माता! यदि आप मन में सुख मानें (प्रसन्न होकर) आज्ञा दें
तो मुझे उनका भय तो बिलकुल नहीं है॥

[दोहा १७]

देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु।।

हनुमान्‌जी को बुद्धि और बल में निपुण देखकर जानकीजी ने कहा- जाओ।
हे तात! श्री रघुनाथजी के चरणों को हृदय में धारण करके मीठे फल खाओ॥

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा।
फल खाएसि तरु तोरैं लागा।।

वे सीताजी को सिर नवाकर चले और बाग में घुस गए।
फल खाए और वृक्षों को तोड़ने लगे।

रहे तहाँ बहु भट रखवारे।
कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे।।

वहाँ बहुत से योद्धा रखवाले थे।
उनमें से कुछ को मार डाला और कुछ ने जाकर रावण से पुकार की-॥

नाथ एक आवा कपि भारी।
तेहिं असोक बाटिका उजारी।।

और कहा-हे नाथ! एक बड़ा भारी बंदर आया है।
उसने अशोक वाटिका उजाड़ डाली।

खाएसि फल अरु बिटप उपारे।
रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे।।

फल खाए, वृक्षों को उखाड़ डाला
और रखवालों को मसल-मसलकर जमीन पर डाल दिया॥

सुनि रावन पठए भट नाना।
तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना।।

यह सुनकर रावण ने बहुत से योद्धा भेजे।
उन्हें देखकर हनुमान्‌जी ने गर्जना की।

सब रजनीचर कपि संघारे।
गए पुकारत कछु अधमारे।।

हनुमान्‌जी ने सब राक्षसों को मार डाला,
कुछ जो अधमरे थे, चिल्लाते हुए गए॥

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा।
चला संग लै सुभट अपारा।।

फिर रावण ने अक्षयकुमार को भेजा।
वह असंख्य श्रेष्ठ योद्धाओं को साथ लेकर चला।

आवत देखि बिटप गहि तर्जा।
ताहि निपाति महाधुनि गर्जा।।

उसे आते देखकर हनुमान्‌जी ने एक वृक्ष (हाथ में) लेकर ललकारा
और उसे मारकर महाध्वनि (बड़े जोर) से गर्जना की॥

[दोहा १८]

कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि।।

उन्होंने सेना में से कुछ को मार डाला और कुछ को मसल डाला और कुछ को पकड़-पकड़कर धूल में मिला दिया।
कुछ ने फिर जाकर पुकार की कि हे प्रभु! बंदर बहुत ही बलवान्‌ है॥

सुनि सुत बध लंकेस रिसाना।
पठएसि मेघनाद बलवाना।।

पुत्र का वध सुनकर रावण क्रोधित हो उठा
और उसने (अपने जेठे पुत्र) बलवान्‌ मेघनाद को भेजा।

मारसि जनि सुत बांधेसु ताही।
देखिअ कपिहि कहाँ कर आही।।

उससे कहा कि-हे पुत्र! मारना नहीं उसे बाँध लाना
उस बंदर को देखा जाए कि कहाँ का है॥

चला इंद्रजित अतुलित जोधा।
बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा।।

इंद्र को जीतने वाला अतुलनीय योद्धा मेघनाद चला।
भाई का मारा जाना सुन उसे क्रोध हो आया।

कपि देखा दारुन भट आवा।
कटकटाइ गर्जा अरु धावा।।

हनुमान्‌जी ने देखा कि अबकी भयानक योद्धा आया है।
तब वे कटकटाकर गर्जे और दौड़े॥

अति बिसाल तरु एक उपारा।
बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा।।

उन्होंने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया
और (उसके प्रहार से) लंकेश्वर रावण के पुत्र मेघनाद को बिना रथ का कर दिया। (रथ को तोड़कर उसे नीचे पटक दिया)।

रहे महाभट ताके संगा।
गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा।।

उसके साथ जो बड़े-बड़े योद्धा थे,
उनको पकड़-पकड़कर हनुमान्‌जी अपने शरीर से मसलने लगे॥

तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा।
भिरे जुगल मानहुँ गजराजा।

उन सबको मारकर फिर मेघनाद से लड़ने लगे।
(लड़ते हुए वे ऐसे मालूम होते थे) मानो दो गजराज (श्रेष्ठ हाथी) भिड़ गए हों।

मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई।
ताहि एक छन मुरुछा आई।।

हनुमान्‌जी उसे एक घूँसा मारकर वृक्ष पर जा चढ़े।
उसको क्षणभर के लिए मूर्च्छा आ गई॥

उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया।
जीति न जाइ प्रभंजन जाया।।

फिर उठकर उसने बहुत माया रची,
परंतु पवन के पुत्र उससे जीते नहीं जाते॥

[दोहा १९]

ब्रह्म अस्त्र तेहिं साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार।।

अअंत में उसने ब्रह्मास्त्र का संधान (प्रयोग) किया, तब हनुमान्‌जी ने मन में विचार किया कि
यदि ब्रह्मास्त्र को नहीं मानता हूँ तो उसकी अपार महिमा मिट जाएगी॥

ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहि मारा।
परतिहुँ बार कटकु संघारा।।

उसने हनुमान्‌जी को ब्रह्मबाण मारा, (जिसके लगते ही वे वृक्ष से नीचे गिर पड़े),
परंतु गिरते समय भी उन्होंने बहुत सी सेना मार डाली।

तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ।
नागपास बाँधेसि लै गयऊ।।

जब उसने देखा कि हनुमान्‌जी मूर्छित हो गए हैं,
तब वह उनको नागपाश से बाँधकर ले गया॥

जासु नाम जपि सुनहु भवानी।
भव बंधन काटहिं नर ग्यानी।।

शिवजी कहते हैं-हे भवानी सुनो, जिनका नाम जपकर
ज्ञानी (विवेकी) मनुष्य संसार (जन्म-मरण) के बंधन को काट डालते हैं,

तासु दूत कि बंध तरु आवा।
प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा।।

उनका दूत कहीं बंधन में आ सकता है?
किंतु प्रभु के कार्य के लिए हनुमान्‌जी ने स्वयं अपने को बँधा लिया॥

कपि बंधन सुनि निसिचर धाए।
कौतुक लागि सभाँ सब आए।।

बंदर का बाँधा जाना सुनकर राक्षस दौड़े
और कौतुक के लिए (तमाशा देखने के लिए) सब सभा में आए।

दसमुख सभा दीखि कपि जाई।
कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई।।

हनुमान्‌जी ने जाकर रावण की सभा देखी।
उसकी अत्यंत प्रभुता (ऐश्वर्य) कुछ कही नहीं जाती॥

कर जोरें सुर दिसिप बिनीता।
भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।।

देवता और दिक्पाल हाथ जोड़े बड़ी नम्रता के साथ
भयभीत हुए सब रावण की भौं ताक रहे हैं।

देखि प्रताप न कपि मन संका।
जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका।।

(उसका रुख देख रहे हैं) उसका ऐसा प्रताप देखकर भी हनुमान्‌जी के मन में जरा भी डर नहीं हुआ।
वे ऐसे निःशंख खड़े रहे, जैसे सर्पों के समूह में गरुड़ निःशंख निर्भय) रहते हैं॥

[दोहा २०]

कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिषाद।।

हनुमान्‌जी को देखकर रावण दुर्वचन कहता हुआ खूब हँसा।
फिर पुत्र वध का स्मरण किया तो उसके हृदय में विषाद उत्पन्न हो गया॥

कह लंकेस कवन तैं कीसा।
केहिं के बल घालेहि बन खीसा।।

लंकापति रावण ने कहा-रे वानर! तू कौन है?
किसके बल पर तूने वन को उजाड़कर नष्ट कर डाला?

की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही।
देखउँ अति असंक सठ तोही।।

क्या तूने कभी मुझे (मेरा नाम और यश) कानों से नहीं सुना?
रे शठ! मैं तुझे अत्यंत निःशंख देख रहा हूँ॥

मारे निसिचर केहिं अपराधा।
कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा।।

तूने किस अपराध से राक्षसों को मारा?
रे मूर्ख! बता, क्या तुझे प्राण जाने का भय नहीं है?

सुन रावन ब्रह्मांड निकाया।
पाइ जासु बल बिरचित माया।।

हनुमान्‌जी ने कहा-हे रावण! सुन, जिनका बल पाकर
माया संपूर्ण ब्रह्मांडों के समूहों की रचना करती है,

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा।
पालत सृजत हरत दससीसा।

जिनके बल से हे दशशीश! ब्रह्मा, विष्णु, महेश (क्रमशः)
सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करते हैं,

जा बल सीस धरत सहसानन।
अंडकोस समेत गिरि कानन।।

जिनके बल से सहस्रमुख (फणों) वाले शेषजी पर्वत
और वनसहित समस्त ब्रह्मांड को सिर पर धारण करते हैं,

धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता।
तुम्ह ते सठन्ह सिखावनु दाता।

जो देवताओं की रक्षा के लिए नाना प्रकार की देह धारण करते हैं
और जो तुम्हारे जैसे मूर्खों को शिक्षा देने वाले हैं,

हर कोदंड कठिन जेहि भंजा।
तेहि समेत नृप दल मद गंजा।।

जिन्होंने शिवजी के कठोर धनुष को तोड़ डाला
और उसी के साथ राजाओं के समूह का गर्व चूर्ण कर दिया॥

खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली।
बधे सकल अतुलित बलसाली।।

जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा और बालि को मार डाला,
जो सब के सब अतुलनीय बलवान् थे॥

[दोहा २१]

जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि।।

जिनके लेशमात्र बल से तुमने समस्त चराचर जगत् को जीत लिया
और जिनकी प्रिय पत्नी को तुम (चोरी से) हर लाए हो, मैं उन्हीं का दूत हूँ॥

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई।
सहसबाहु सन परी लराई।।

मैं तुम्हारी प्रभुता को खूब जानता हूँ
सहस्रबाहु से तुम्हारी लड़ाई हुई थी

समर बालि सन करि जसु पावा।
सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा।।

और बालि से युद्ध करके तुमने यश प्राप्त किया था।
हनुमान्‌जी के (मार्मिक) वचन सुनकर रावण ने हँसकर बात टाल दी॥

खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा।
कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा।।

हे (राक्षसों के) स्वामी मुझे भूख लगी थी,
(इसलिए) मैंने फल खाए और वानर स्वभाव के कारण वृक्ष तोड़े।

सब कें देह परम प्रिय स्वामी।
मारहिं मोहि कुमारग गामी।।

हे (निशाचरों के) मालिक! देह सबको परम प्रिय है।
कुमार्ग पर चलने वाले (दुष्ट) राक्षस जब मुझे मारने लगे॥

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे।
तेहि पर बाँधेउ तनयँ तुम्हारे।।

तब जिन्होंने मुझे मारा, उनको मैंने भी मारा।
उस पर तुम्हारे पुत्र ने मुझको बाँध लिया (किंतु),

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा।
कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा।।

मुझे अपने बाँधे जाने की कुछ भी लज्जा नहीं है।
मैं तो अपने प्रभु का कार्य करना चाहता हूँ॥

बिनती करउँ जोरि कर रावन।
सुनहु मान तजि मोर सिखावन।।

हे रावण! मैं हाथ जोड़कर तुमसे विनती करता हूँ,
तुम अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो।

देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी।
भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी।।

तुम अपने पवित्र कुल का विचार करके देखो
और भ्रम को छोड़कर भक्त भयहारी भगवान् को भजो॥

जाकें डर अति काल डेराई।
जो सुर असुर चराचर खाई।।

जो देवता, राक्षस और समस्त चराचर को खा जाता है,
वह काल भी जिनके डर से अत्यंत डरता है,

तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै।
मोरे कहें जानकी दीजै।।

उनसे कदापि वैर न करो
और मेरे कहने से जानकीजी को दे दो॥

[दोहा २२]

प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि।।

खर के शत्रु श्री रघुनाथजी शरणागतों के रक्षक और दया के समुद्र हैं।
शरण जाने पर प्रभु तुम्हारा अपराध भुलाकर तुम्हें अपनी शरण में रख लेंगे॥

राम चरन पंकज उर धरहू।
लंका अचल राजु तुम्ह करहू।।

तुम श्री रामजी के चरण कमलों को हृदय में धारण करो
और लंका का अचल राज्य करो।

रिषि पुलिस्त जसु बिमल मंयका।
तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका।।

ऋषि पुलस्त्यजी का यश निर्मल चंद्रमा के समान है।
उस चंद्रमा में तुम कलंक न बनो॥

राम नाम बिनु गिरा न सोहा।
देखु बिचारि त्यागि मद मोहा।।

राम नाम के बिना वाणी शोभा नहीं पाती,
मद-मोह को छोड़, विचारकर देखो।

बसन हीन नहिं सोह सुरारी।
सब भूषण भूषित बर नारी।।

हे देवताओं के शत्रु! सब गहनों से सजी हुई सुंदरी स्त्री भी
कपड़ों के बिना (नंगी) शोभा नहीं पाती॥

राम बिमुख संपति प्रभुताई।
जाइ रही पाई बिनु पाई।।

रामविमुख पुरुष की संपत्ति और प्रभुता रही हुई भी चली जाती है
और उसका पाना न पाने के समान है।

सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं।
बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं।।

जिन नदियों के मूल में कोई जलस्रोत नहीं है।
(अर्थात् जिन्हें केवल बरसात ही आसरा है) वे वर्षा बीत जाने पर फिर तुरंत ही सूख जाती हैं॥

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी।
बिमुख राम त्राता नहिं कोपी।।

हे रावण! सुनो, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि
रामविमुख की रक्षा करने वाला कोई भी नहीं है।

संकर सहस बिष्नु अज तोही।
सकहिं न राखि राम कर द्रोही।।

हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्मा भी
श्री रामजी के साथ द्रोह करने वाले तुमको नहीं बचा सकते॥

[दोहा २३]

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान।।

मोह ही जिनका मूल है ऐसे (अज्ञानजनित), बहुत पीड़ा देने वाले, तमरूप अभिमान का त्याग कर दो
और रघुकुल के स्वामी, कृपा के समुद्र भगवान् श्री रामचंद्रजी का भजन करो॥

जदपि कहि कपि अति हित बानी।
भगति बिबेक बिरति नय सानी।।

यद्यपि हनुमान्‌जी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य
और नीति से सनी हुई बहुत ही हित की वाणी कही,

बोला बिहसि महा अभिमानी।
मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी।।

तो भी वह महान्‌ अभिमानी रावण बहुत हँसकर (व्यंग्य से) बोला कि
हमें यह बंदर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला!॥

मृत्यु निकट आई खल तोही।
लागेसि अधम सिखावन मोही।।

रे दुष्ट! तेरी मृत्यु निकट आ गई है।
अधम! मुझे शिक्षा देने चला है।

उलटा होइहि कह हनुमाना।
मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना।।

हनुमान्‌जी ने कहा- इससे उलटा ही होगा (अर्थात्‌ मृत्यु तेरी निकट आई है, मेरी नहीं)।
यह तेरा मतिभ्रम (बुद्धि का फेर) है, मैंने प्रत्यक्ष जान लिया है॥

सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना।
बेगि न हरहुँ मूढ़ कर प्राना।।

हनुमान्‌जी के वचन सुनकर वह बहुत ही कुपित हो गया।
और बोला-अरे! इस मूर्ख का प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं हर लेते?

सुनत निसाचर मारन धाए।
सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए।

सुनते ही राक्षस उन्हें मारने दौड़े
उसी समय मंत्रियों के साथ विभीषणजी वहाँ आ पहुँचे॥

नाइ सीस करि बिनय बहूता।
नीति बिरोध न मारिअ दूता।।

उन्होंने सिर नवाकर और बहुत विनय करके रावण से कहा कि
दूत को मारना नहीं चाहिए, यह नीति के विरुद्ध है।

आन दंड कछु करिअ गोसाँई।
सबहीं कहा मंत्र भल भाई।।

हे गोसाईं। कोई दूसरा दंड दिया जाए।
सबने कहा- भाई! यह सलाह उत्तम है॥

सुनत बिहसि बोला दसकंधर।
अंग भंग करि पठइअ बंदर।।

यह सुनते ही रावण हँसकर बोला-
अच्छा तो, बंदर को अंग-भंग करके भेज (लौटा) दिया जाए॥

[दोहा २४]

कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ।।

मैं सबको समझाकर कहता हूँ कि बंदर की ममता पूँछ पर होती है।
अतः तेल में कपड़ा डुबोकर उसे इसकी पूँछ में बाँधकर फिर आग लगा दो॥

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि।
तब सठ निज नाथहि लइ आइहि।।

जब बिना पूँछ का यह बंदर वहाँ (अपने स्वामी के पास) जाएगा,
तब यह मूर्ख अपने मालिक को साथ ले आएगा।

जिन्ह कै कीन्हसि बहुत बड़ाई।
देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई।।

जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है,
मैं जरा उनकी प्रभुता (सामर्थ्य) तो देखूँ!॥

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना।
भइ सहाय सारद मैं जाना।।

यह वचन सुनते ही हनुमान्‌जी मन में मुस्कुराए
(और मन ही मन बोले कि) मैं जान गया, सरस्वतीजी (इसे ऐसी बुद्धि देने में) सहायक हुई हैं।

जातुधान सुनि रावन बचना।
लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना।।

रावण के वचन सुनकर मूर्ख राक्षस
वही (पूँछ में आग लगाने की) तैयारी करने लगे॥

रहा न नगर बसन घृत तेला।
बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला।।

(पूँछ के लपेटने में इतना कपड़ा और घी-तेल लगा कि) नगर में कपड़ा, घी और तेल नहीं रह गया।
हनुमान्‌जी ने ऐसा खेल किया कि पूँछ बढ़ गई (लंबी हो गई)।

कौतुक कहँ आए पुरबासी।
मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी।।

नगरवासी लोग तमाशा देखने आए।
वे हनुमान्‌जी को पैर से ठोकर मारते हैं और उनकी हँसी करते हैं॥

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी।
नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी।।

ढोल बजते हैं, सब लोग तालियाँ पीटते हैं।
हनुमान्‌जी को नगर में फिराकर, फिर पूँछ में आग लगा दी।

पावक जरत देखि हनुमंता।
भयउ परम लघु रुप तुरंता।।

अग्नि को जलते हुए देखकर हनुमान्‌जी
तुरंत ही बहुत छोटे रूप में हो गए॥

निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं।
भई सभीत निसाचर नारीं।।

बंधन से निकलकर वे सोने की अटारियों पर जा चढ़े।
उनको देखकर राक्षसों की स्त्रियाँ भयभीत हो गईं॥

[दोहा २५]

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास।।

उस समय भगवान्‌ की प्रेरणा से उनचासों पवन चलने लगे।
हनुमान्‌जी अट्टहास करके गर्जे और बढ़कर आकाश से जा लगे॥

देह बिसाल परम हरुआई।
मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई।।

देह बड़ी विशाल, परंतु बहुत ही हल्की (फुर्तीली) है।
वे दौड़कर एक महल से दूसरे महल पर चढ़ जाते हैं।

जरइ नगर भा लोग बिहाला।
झपट लपट बहु कोटि कराला।।

नगर जल रहा है लोग बेहाल हो गए हैं।
आग की करोड़ों भयंकर लपटें झपट रही हैं॥

तात मातु हा सुनिअ पुकारा।
एहिं अवसर को हमहि उबारा।।

हाय बप्पा! हाय मैया! इस अवसर पर हमें कौन बचाएगा?
(चारों ओर) यही पुकार सुनाई पड़ रही है।

हम जो कहा यह कपि नहिं होई।
बानर रूप धरें सुर कोई।।

हमने तो पहले ही कहा था कि यह वानर नहीं है,
वानर का रूप धरे कोई देवता है!॥

साधु अवग्या कर फलु ऐसा।
जरइ नगर अनाथ कर जैसा।।

साधु के अपमान का यह फल है कि नगर,
अनाथ के नगर की तरह जल रहा है।

जारा नगरु निमिष एक माहीं।
एक बिभीषन कर गृह नाहीं।।

हनुमान्‌जी ने एक ही क्षण में सारा नगर जला डाला।
एक विभीषण का घर नहीं जलाया॥

ता कर दूत अनल जेहिं सिरिजा।
जरा न सो तेहि कारन गिरिजा।।

शिवजी कहते हैं-हे पार्वती! जिन्होंने अग्नि को बनाया, हनुमान्‌जी उन्हीं के दूत हैं।
इसी कारण वे अग्नि से नहीं जले।

उलटि पलटि लंका सब जारी।
कूदि परा पुनि सिंधु मझारी।।

हनुमान्‌जी ने उलट-पलटकर (एक ओर से दूसरी ओर तक) सारी लंका जला दी।
फिर वे समुद्र में कूद पड़े॥

[दोहा २६]

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता के आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि।।

पूँछ बुझाकर, थकावट दूर करके और फिर छोटा सा रूप धारण कर
हनुमान्‌जी श्री जानकीजी के सामने हाथ जोड़कर जा खड़े हुए॥

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा।
जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा।।

हनुमान्‌जी ने कहा-हे माता! मुझे कोई चिह्न (पहचान) दीजिए,
जैसे श्री रघुनाथजी ने मुझे दिया था।

चूड़ामनि उतारि तब दयऊ।
हरष समेत पवनसुत लयऊ।।

तब सीताजी ने चूड़ामणि उतारकर दी।
हनुमान्‌जी ने उसको हर्षपूर्वक ले लिया॥

कहेहु तात अस मोर प्रनामा।
सब प्रकार प्रभु पूरनकामा।।

जानकीजी ने कहा- हे तात! मेरा प्रणाम निवेदन करना और इस प्रकार कहना-
हे प्रभु! यद्यपि आप सब प्रकार से पूर्ण काम हैं (आपको किसी प्रकार की कामना नहीं है)॥

दीन दयाल बिरिदु संभारी।
हरहु नाथ मम संकट भारी।।

तथापि दीनों (दुःखियों) पर दया करना आपका विरद है (और मैं दीन हूँ)
अतः उस विरद को याद करके, हे नाथ! मेरे भारी संकट को दूर कीजिए॥

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु।
बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु।।

हे तात! इंद्रपुत्र जयंत की कथा (घटना) सुनाना
और प्रभु को उनके बाण का प्रताप समझाना (स्मरण कराना)।

मास दिवस महुँ नाथु न आवा।
तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा।।

यदि महीने भर में नाथ न आए
तो फिर मुझे जीती न पाएँगे॥

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना।
तुम्हहू तात कहत अब जाना।।

हे हनुमान्! कहो, मैं किस प्रकार प्राण रखूँ!
हे तात! तुम भी अब जाने को कह रहे हो।

तोहि देखि सीतलि भइ छाती।
पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती।।

तुमको देखकर छाती ठंडी हुई थी।
फिर मुझे वही दिन और वही रात!॥

[दोहा २७]

जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह।।

हनुमान्जी ने जानकीजी को समझाकर बहुत प्रकार से धीरज दिया
और उनके चरणकमलों में सिर नवाकर श्री रामजी के पास गमन किया॥

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी।
गर्भ स्त्रवहिं सुनि निसिचर नारी।।

चलते समय उन्होंने महाध्वनि से भारी गर्जन किया,
ग जिसे सुनकर राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे।

नाघि सिंधु एहि पारहि आवा।
सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा।।

समुद्र लाँघकर वे इस पार आए
और उन्होंने वानरों को किलकिला शब्द (हर्षध्वनि) सुनाया॥

हरषे सब बिलोकि हनुमाना।
नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना।।

हनुमान्‌जी को देखकर सब हर्षित हो गए
और तब वानरों ने अपना नया जन्म समझा।

मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा।
कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा।।

हनुमान्‌जी का मुख प्रसन्न है और शरीर में तेज विराजमान है,
(जिससे उन्होंने समझ लिया कि) ये श्री रामचंद्रजी का कार्य कर आए हैं॥

मिले सकल अति भए सुखारी।
तलफत मीन पाव जिमि बारी।।

सब हनुमान्‌जी से मिले और बहुत ही सुखी हुए,
जैसे तड़पती हुई मछली को जल मिल गया हो।

चले हरषि रघुनायक पासा।
पूँछत कहत नवल इतिहासा।।

सब हर्षित होकर नए-नए इतिहास (वृत्तांत) पूछते-
कहते हुए श्री रघुनाथजी के पास चले॥

तब मधुबन भीतर सब आए।
अंगद संमत मधु फल खाए।।

तब सब लोग मधुवन के भीतर आए
और अंगद की सम्मति से सबने मधुर फल (या मधु और फल) खाए।

रखवारे जब बरजन लागे।
मुष्टि प्रहार हनत सब भागे।।

जब रखवाले बरजने लगे,
तब घूँसों की मार मारते ही सब रखवाले भाग छूटे॥

[दोहा २८]

जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज।।

उन सबने जाकर पुकारा कि युवराज अंगद वन उजाड़ रहे हैं।
यह सुनकर सुग्रीव हर्षित हुए कि वानर प्रभु का कार्य कर आए हैं॥

जौं न होति सीता सुधि पाई।
मधुबन के फल सकहिं कि खाई।।

यदि सीताजी की खबर न पाई होती
तो क्या वे मधुवन के फल खा सकते थे?

एहि बिधि मन बिचार कर राजा।
आइ गए कपि सहित समाजा।।

इस प्रकार राजा सुग्रीव मन में विचार कर ही रहे थे
कि समाज सहित वानर आ गए॥

आइ सबन्हि नावा पद सीसा।
मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा।।

सबने आकर सुग्रीव के चरणों में सिर नवाया।
कपिराज सुग्रीव सभी से बड़े प्रेम के साथ मिले।

पूँछी कुसल कुसल पद देखी।
राम कृपाँ भा काजु बिसेषी।।

उन्होंने कुशल पूछी, (तब वानरों ने उत्तर दिया-)आपके चरणों के दर्शन से सब कुशल है।
श्री रामजी की कृपा से विशेष कार्य हुआ (कार्य में विशेष सफलता हुई है)॥

नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना।
राखे सकल कपिन्ह के प्राना।।

हे नाथ! हनुमान ने सब कार्य किया
और सब वानरों के प्राण बचा लिए॥

सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ।
कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ।।

यह सुनकर सुग्रीवजी हनुमान्‌जी से फिर मिले
और सब वानरों समेत श्री रघुनाथजी के पास चले॥

राम कपिन्ह जब आवत देखा।
किएँ काजु मन हरष बिसेषा।।

श्री रामजी ने जब वानरों को कार्य किए हुए आते देखा
तब उनके मन में विशेष हर्ष हुआ॥

फटिक सिला बैठे द्वौ भाई।
परे सकल कपि चरनन्हि जाई।।

दोनों भाई स्फटिक शिला पर बैठे थे।
सब वानर जाकर उनके चरणों पर गिर पड़े॥

[दोहा २९]

प्रीति सहित सब भेटे रघुपति करुना पुंज।
पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज।।

दया की राशि श्री रघुनाथजी सबसे प्रेम सहित गले लगकर मिले और कुशल पूछी।
वानरों ने कहा- हे नाथ! आपके चरण कमलों के दर्शन पाने से अब कुशल है॥

जामवंत कह सुनु रघुराया।
जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया।।

जाम्बवान्‌ ने कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए।
हे नाथ! जिस पर आप दया करते हैं,

ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर।
सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर।।

उसे सदा कल्याण और निरंतर कुशल है।
देवता, मनुष्य और मुनि सभी उस पर प्रसन्न रहते हैं॥

सोइ बिजई बिनई गुन सागर।
तासु सुजसु त्रैलोक उजागर।।

वही विजयी है, वही विनयी है और वही गुणों का समुद्र बन जाता है।
उसी का सुंदर यश तीनों लोकों में प्रकाशित होता है॥

प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू।
जन्म हमार सुफल भा आजू।।

प्रभु की कृपा से सब कार्य हुआ।
आज हमारा जन्म सफल हो गया॥

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी।
सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी।।

हे नाथ! पवनपुत्र हनुमान् ने जो करनी की,
उसका हजार मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता॥

पवनतनय के चरित सुहाए।
जामवंत रघुपतिहि सुनाए।।

तब जाम्बवान् ने हनुमान्जी के सुंदर चरित्र (कार्य)
श्री रघुनाथजी को सुनाए॥

सुनत कृपानिधि मन अति भाए।
पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए।।

-(वे चरित्र) सुनने पर कृपानिधि श्री रामचंदजी के मन को बहुत ही अच्छे लगे।
उन्होंने हर्षित होकर हनुमान्जी को फिर हृदय से लगा लिया॥

कहहु तात केहि भाँति जानकी।
रहति करति रच्छा स्वप्रान की।।

और कहा- हे तात! कहो, सीता किस प्रकार रहती
और अपने प्राणों की रक्षा करती हैं?॥

[दोहा ३०]

नाम पाहरु दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट।।

हनुमान्‌जी ने कहा-आपका नाम रात-दिन पहरा देने वाला है, आपका ध्यान ही किंवाड़ है। नेत्रों को अपने चरणों में लगाए रहती हैं, यही ताला लगा है, फिर प्राण जाएँ तो किस मार्ग से?॥

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही।
रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही।।

चलते समय उन्होंने मुझे चूड़ामणि (उतारकर) दी।
श्री रघुनाथजी ने उसे लेकर हृदय से लगा लिया॥

नाथ जुगल लोचन भरि बारी।
बचन कहे कछु जनककुमारी।।

हनुमान्‌जी ने फिर कहा- हे नाथ! दोनों नेत्रों में जल भरकर
जानकीजी ने मुझसे कुछ वचन कहे-॥

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना।
दीन बंधु प्रनतारति हरना।।

छोटे भाई समेत प्रभु के चरण पकड़ना (और कहना कि)
आप दीनबंधु हैं, शरणागत के दुःखों को हरने वाले हैं ॥

मन क्रम बचन चरन अनुरागी।
केहि अपराध नाथ हौं त्यागी।।

और मैं मन, वचन और कर्म से आपके चरणों की अनुरागिणी हूँ।
फिर स्वामी (आप) ने मुझे किस अपराध से त्याग दिया?॥

अवगुन एक मोर मैं माना।
बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना।।

(हाँ) एक दोष मैं अपना (अवश्य) मानती हूँ
कि आपका वियोग होते ही मेरे प्राण नहीं चले गए ॥

नाथ सो नयनन्हि को अपराधा।
निसरत प्रान करहिं हठि बाधा।।

किंतु हे नाथ! यह तो नेत्रों का अपराध है
जो प्राणों के निकलने में हठपूर्वक बाधा देते हैं॥

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा।
स्वास जरइ छन माहिं सरीरा।।

विरह अग्नि है, शरीर रूई है और श्वास पवन है,
इस प्रकार (अग्नि और पवन का संयोग होने से) यह शरीर क्षणमात्र में जल सकता है॥

नयन स्त्रवहि जलु निज हित लागी।
जरैं न पाव देह बिरहागी।

परंतु नेत्र अपने हित के लिए प्रभु का स्वरूप देखकर (सुखी होने के लिए) जल (आँसू) बरसाते हैं,
जिससे विरह की आग से भी देह जलने नहीं पाती॥

सीता के अति बिपति बिसाला।
बिनहिं कहें भलि दीनदयाला।।

सीताजी की विपत्ति बहुत बड़ी है।
हे दीनदयालु! वह बिना कही ही अच्छी है (कहने से आपको बड़ा क्लेश होगा)॥

[दोहा ३१]

निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिय प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति।।

हे करुणानिधान! उनका एक-एक पल कल्प के समान बीतता है।
अतः हे प्रभु! तुरंत चलिए और अपनी भुजाओं के बल से दुष्टों के दल को जीतकर सीताजी को ले आइए॥

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना।
भरि आए जल राजिव नयना।।

सीताजी का दुःख सुनकर सुख के धाम
प्रभु के कमल नेत्रों में जल भर आया॥

बचन काँय मन मम गति जाही।
सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही।।

और वे बोले- मन, वचन और शरीर से जिसे मेरी ही गति (मेरा ही आश्रय) है,
उसे क्या स्वप्न में भी विपत्ति हो सकती है?॥

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई।
जब तव सुमिरन भजन न होई।।

हनुमान्‌जी ने कहा- हे प्रभु! विपत्ति तो वही (तभी) है
जब आपका भजन-स्मरण न हो॥

केतिक बात प्रभु जातुधान की।
रिपुहि जीति आनिबी जानकी।।

हे प्रभो! राक्षसों की बात ही कितनी है?
आप शत्रु को जीतकर जानकीजी को ले आवेंगे॥

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।।

भगवान्‌ कहने लगे- हे हनुमान्‌! सुन, तेरे समान मेरा उपकारी
देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है॥

प्रति उपकार करौं का तोरा।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।

मैं तेरा प्रत्युपकार (बदले में उपकार) तो क्या करूँ,
मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता॥

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि बिचार मन माहीं।।

पुत्र! सुन, मैंने मन में (खूब) विचार करके देख लिया कि
मैं तुझसे उऋण नहीं हो सकता॥

पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता।
लोचन नीर पुलक अति गाता।।

देवताओं के रक्षक प्रभु बार-बार हनुमान्‌जी को देख रहे हैं।
नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का जल भरा है और शरीर अत्यंत पुलकित है॥

[दोहा ३२]

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत।।

प्रभु के वचन सुनकर और उनके (प्रसन्न) मुख तथा (पुलकित) अंगों को देखकर हनुमान्‌जी हर्षित हो गए
और प्रेम में विकल होकर 'हे भगवन्! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए श्री रामजी के चरणों में गिर पड़े॥

बार बार प्रभु चहइ उठावा।
प्रेम मगन तेहि उठब न भावा।।

प्रभु उनको बार-बार उठाना चाहते हैं,
परंतु प्रेम में डूबे हुए हनुमान्‌जी को चरणों से उठना सुहाता नहीं॥

प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा।
सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा।।

प्रभु का करकमल हनुमान्‌जी के सिर पर है।
उस स्थिति का स्मरण करके शिवजी प्रेममग्न हो गए॥

सावधान मन करि पुनि संकर।
लागे कहन कथा अति सुंदर।।

फिर मन को सावधान करके
शंकरजी अत्यंत सुंदर कथा कहने लगे-

कपि उठाइ प्रभु हृदयँ लगावा।
कर गहि परम निकट बैठावा।।

हनुमान्‌जी को उठाकर प्रभु ने हृदय से लगाया
और हाथ पकड़कर अत्यंत निकट बैठा लिया॥

कहु कपि रावन पालित लंका।
केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका।।

हे हनुमान्! बताओ तो, रावण के द्वारा सुरक्षित लंका
और उसके बड़े बाँके किले को तुमने किस तरह जलाया?

प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना।
बोला बचन बिगत अभिमाना।।

हनुमान्‌जी ने प्रभु को प्रसन्न जाना
और वे अभिमानरहित वचन बोले- ॥

साखामृग के बड़ि मनुसाई।
साखा तें साखा पर जाई।।

बंदर का बस, यही बड़ा पुरुषार्थ है कि
वह एक डाल से दूसरी डाल पर चला जाता है॥

नाघि सिंधु हाटकपुर जारा।
निसिचर गन बिधि बिपिन उजारा।।

मैंने जो समुद्र लाँघकर सोने का नगर जलाया
और राक्षसगण को मारकर अशोक वन को उजाड़ डाला॥

सो सब तव प्रताप रघुराई।
नाथ न कछू मोरि प्रभुताई।।

यह सब तो हे श्री रघुनाथजी! आप ही का प्रताप है।
हे नाथ! इसमें मेरी प्रभुता (बड़ाई) कुछ भी नहीं है॥

[दोहा ३३]

ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकुल।
तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल।।

हे प्रभु! जिस पर आप प्रसन्न हों, उसके लिए कुछ भी कठिन नहीं है।
आपके प्रभाव से रूई (जो स्वयं बहुत जल्दी जल जाने वाली वस्तु है)
बड़वानल को निश्चय ही जला सकती है (अर्थात् असंभव भी संभव हो सकता है)॥

नाथ भगति अति सुखदायनी।
देहु कृपा करि अनपायनी।।

हे नाथ! मुझे अत्यंत सुख देने वाली
अपनी निश्चल भक्ति कृपा करके दीजिए॥

सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी।
एवमस्तु तब कहेउ भवानी।।

हनुमान्‌जी की अत्यंत सरल वाणी सुनकर,
हे भवानी! तब प्रभु श्री रामचंद्रजी ने 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा॥

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना।
ताहि भजनु तजि भाव न आना।।

हे उमा! जिसने श्री रामजी का स्वभाव जान लिया,
उसे भजन छोड़कर दूसरी बात ही नहीं सुहाती॥

यह संबाद जासु उर आवा।
रघुपति चरन भगति सोइ पावा।।

यह स्वामी-सेवक का संवाद जिसके हृदय में आ गया,
वही श्री रघुनाथजी के चरणों की भक्ति पा गया॥

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपिबृंदा।
जय जय जय कृपाल सुखकंदा।।

प्रभु के वचन सुनकर वानरगण कहने लगे-
कृपालु आनंदकंद श्री रामजी की जय हो जय हो, जय हो!

तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा।
कहा चलैं कर करहु बनावा।।

तब श्री रघुनाथजी ने कपिराज सुग्रीव को बुलाया और कहा-
चलने की तैयारी करो॥

अब बिलंबु केहि कारन कीजे।
तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे।।

अब विलंब किस कारण किया जाए।
वानरों को तुरंत आज्ञा दो॥

कौतुक देखि सुमन बहु बरषी।
नभ तें भवन चले सुर हरषी।।

(भगवान् की) यह लीला (रावणवध की तैयारी) देखकर, बहुत से फूल बरसाकर
और हर्षित होकर देवता आकाश से अपने-अपने लोक को चले॥

[दोहा ३४]

कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ।।

वानरराज सुग्रीव ने शीघ्र ही वानरों को बुलाया, सेनापतियों के समूह आ गए।
वानर-भालुओं के झुंड अनेक रंगों के हैं और उनमें अतुलनीय बल है॥

प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा।
गरजहिं भालु महाबल कीसा।।

वे प्रभु के चरण कमलों में सिर नवाते हैं।
महान् बलवान् रीछ और वानर गरज रहे हैं॥

देखी राम सकल कपि सेना।
चितइ कृपा करि राजिव नैना।।

श्री रामजी ने वानरों की सारी सेना देखी।
तब कमल नेत्रों से कृपापूर्वक उनकी ओर दृष्टि डाली॥

राम कृपा बल पाइ कपिंदा।
भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा।।

राम कृपा का बल पाकर श्रेष्ठ वानर
मानो पंखवाले बड़े पर्वत हो गए॥

हरषि राम तब कीन्ह पयाना।
सगुन भए सुंदर सुभ नाना।।

तब श्री रामजी ने हर्षित होकर प्रस्थान (कूच) किया।
अनेक सुंदर और शुभ शकुन हुए॥

जासु सकल मंगलमय कीती।
तासु पयान सगुन यह नीती।।

-जिनकी कीर्ति सब मंगलों से पूर्ण है,
उनके प्रस्थान के समय शकुन होना, यह नीति है (लीला की मर्यादा है)॥

प्रभु पयान जाना बैदेहीं।
फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं।।

प्रभु का प्रस्थान जानकीजी ने भी जान लिया।
उनके बाएँ अंग फड़क-फड़ककर मानो कहे देते थे (कि श्री रामजी आ रहे हैं)॥

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई।
असगुन भयउ रावनहि सोई।।

जानकीजी को जो-जो शकुन होते थे,
वही-वही रावण के लिए अपशकुन हुए ॥

चला कटकु को बरनैं पारा।
गर्जहि बानर भालु अपारा।।

सेना चली, उसका वर्णन कौन कर सकता है?
असंख्य वानर और भालू गर्जना कर रहे हैं॥

नख आयुध गिरि पादपधारी।
चले गगन महि इच्छाचारी।।

नख ही जिनके शस्त्र हैं, वे इच्छानुसार (सर्वत्र बेरोक-टोक) चलने वाले रीछ-वानर
पर्वतों और वृक्षों को धारण किए कोई आकाश मार्ग से और कोई पृथ्वी पर चले जा रहे हैं॥

केहरिनाद भालु कपि करहीं।
डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं।।

वे सिंह के समान गर्जना कर रहे हैं।
(उनके चलने और गर्जने से) दिशाओं के हाथी विचलित होकर चिंग्घाड़ रहे हैं॥

छं० - चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि
लोल सागर खरभरे।

दिशाओं के हाथी चिंग्घाड़ने लगे, पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत चंचल हो गए (काँपने लगे)
और समुद्र खलबला उठे॥

मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि
नाग किंनर दुख टरे।।

गंधर्व, देवता, मुनि, नाग, किन्नर सब के सब
मन में हर्षित हुए' कि (अब) हमारे दुःख टल गए॥

कटकटहिं मर्कट बिकट भट
बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।

अनेकों करोड़ भयानक वानर योद्धा कटकटा रहे हैं
और करोड़ों ही दौड़ रहे हैं॥

जय राम प्रबल प्रताप कोसल-
नाथ गुन गन गावहीं।।1।।

'प्रबल प्रताप कोसलनाथ श्री रामचंद्रजी की जय हो'
ऐसा पुकारते हुए वे उनके गुणसमूहों को गा रहे हैं॥

सहि सक न भार उदार अहिपति
बार बारहिं मोहई।

उदार (परम श्रेष्ठ एवं महान्) सर्पराज शेषजी भी सेना का बोझ नहीं सह सकते,
वे बार-बार मोहित हो जाते (घबड़ा जाते) हैं॥

गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ट
कठोर सो किमि सोहई।।

और पुनः-पुनः कच्छप की कठोर पीठ को दाँतों से पकड़ते हैं।
ऐसा करते (अर्थात् बार-बार दाँतों को गड़ाकर कच्छप की पीठ पर लकीर सी खींचते हुए) ॥

रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति
जानि परम सुहावनी।

वे कैसे शोभा दे रहे हैं मानो श्री रामचंद्रजी की
सुंदर प्रस्थान यात्रा को परम सुहावनी।

जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो
लिखत अबिचल पावनी।।2।।

जानकर उसकी अचल पवित्र कथा को सर्पराज शेषजी
कच्छप की पीठ पर लिख रहे हों।।2।।

[दोहा ३५]

एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर।।

इस प्रकार कृपानिधान श्री रामजी समुद्र तट पर जा उतरे।
अनेकों रीछ-वानर वीर जहाँ-तहाँ फल खाने लगे॥

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका।
जब ते जारि गयउ कपि लंका।।

वहाँ (लंका में) जब से हनुमान्‌जी लंका को जलाकर गए,
तब से राक्षस भयभीत रहने लगे॥

निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा।
नहिं निसिचर कुल केर उबारा।।

अपने-अपने घरों में सब विचार करते हैं कि
अब राक्षस कुल की रक्षा (का कोई उपाय) नहीं है॥

जासु दूत बल बरनि न जाई।
तेहि आएँ पुर कवन भलाई।।

जिसके दूत का बल वर्णन नहीं किया जा सकता,
उसके स्वयं नगर में आने पर कौन भलाई है (हम लोगों की बड़ी बुरी दशा होगी)?

दूतन्हि सन सुनि पुरजन बानी।
मंदोदरी अधिक अकुलानी।।

दूतियों से नगरवासियों के वचन सुनकर
मंदोदरी बहुत ही व्याकुल हो गई॥

रहसि जोरि कर पति पग लागी।
बोली बचन नीति रस पागी।।

वह एकांत में हाथ जोड़कर पति (रावण) के चरणों लगी
और नीतिरस में पगी हुई वाणी बोली-

कंत करष हरि सन परिहरहू।
मोर कहा अति हित हियँ धरहु।।

हे प्रियतम! श्री हरि से विरोध छोड़ दीजिए।
मेरे कहने को अत्यंत ही हितकर जानकर हृदय में धारण कीजिए॥

समुझत जासु दूत कइ करनी।
स्त्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी।।

जिनके दूत की करनी का विचार करते ही (स्मरण आते ही)
राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं,

तासु नारि निज सचिव बोलाई।
पठवहु कंत जो चहहु भलाई।।

हे प्यारे स्वामी! यदि भला चाहते हैं, तो अपने मंत्री को बुलाकर
उसके साथ उनकी स्त्री को भेज दीजिए॥

तब कुल कमल बिपिन दुखदाई।
सीता सीत निसा सम आई।।

सीता आपके कुल रूपी कमलों के वन को दुःख देने वाली
जाड़े की रात्रि के समान आई है॥

सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें।
हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें।।

हे नाथ। सुनिए, सीता को दिए (लौटाए) बिना
शम्भु और ब्रह्मा के किए भी आपका भला नहीं हो सकता॥

[दोहा ३६]

राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक।।

श्री रामजी के बाण सर्पों के समूह के समान हैं और राक्षसों के समूह मेंढक के समान।
जब तक वे इन्हें ग्रस नहीं लेते (निगल नहीं जाते) तब तक हठ छोड़कर उपाय कर लीजिए॥

श्रवन सुनी सठ ता करि बानी।
बिहसा जगत बिदित अभिमानी।।

मूर्ख और जगत प्रसिद्ध अभिमानी रावण
कानों से उसकी वाणी सुनकर खूब हँसा (और बोला-)

सभय सुभाउ नारि कर साचा।
मंगल महुँ भय मन अति काचा।।

स्त्रियों का स्वभाव सचमुच ही बहुत डरपोक होता है।
मंगल में भी भय करती हो। तुम्हारा मन (हृदय) बहुत ही कच्चा (कमजोर) है॥

जौं आवइ मर्कट कटकाई।
जिअहिं बिचारे निसिचर खाई।।

यदि वानरों की सेना आवेगी
तो बेचारे राक्षस उसे खाकर अपना जीवन निर्वाह करेंगे॥

कंपहिं लोकप जाकी त्रासा।
तासु नारि सभीत बड़ि हासा।।

लोकपाल भी जिसके डर से काँपते हैं,
उसकी स्त्री डरती हो, यह बड़ी हँसी की बात है॥

अस कहि बिहसि ताहि उर लाई।
चलेउ सभाँ ममता अधिकाई।।

रावण ने ऐसा कहकर हँसकर उसे हृदय से लगा लिया
और ममता बढ़ाकर (अधिक स्नेह दर्शाकर) वह सभा में चला गया॥

मंदोदरी हृदयँ कर चिंता।
भयउ कंत पर बिधि बिपरीता।।

मंदोदरी हृदय में चिंता करने लगी
कि पति पर विधाता प्रतिकूल हो गए॥

बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई।
सिंधु पार सेना सब आई।।

ज्यों ही वह सभा में जाकर बैठा,
उसने ऐसी खबर पाई कि शत्रु की सारी सेना समुद्र के उस पार आ गई है॥

बूझेसि सचिव उचित मत कहहू।
ते सब हँसे मष्ट करि रहहू।।

उसने मंत्रियों से पूछा कि उचित सलाह कहिए (अब क्या करना चाहिए?)।
तब वे सब हँसे और बोले कि चुप किए रहिए (इसमें सलाह की कौन सी बात है?)॥

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं।
नर बानर केहि लेखे माही।।

आपने देवताओं और राक्षसों को जीत लिया, तब तो कुछ श्रम ही नहीं हुआ।
फिर मनुष्य और वानर किस गिनती में हैं?

[दोहा ३७]

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास।।

मंत्री, वैद्य और गुरु- ये तीन यदि (अप्रसन्नता के) भय या (लाभ की) आशा से (हित की बात न कहकर)
प्रिय बोलते हैं (ठकुर सुहाती कहने लगते हैं),
तो (क्रमशः) राज्य, शरीर और धर्म- इन तीन का शीघ्र ही नाश हो जाता है॥

सोइ रावन कहुँ बनि सहाई।
अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई।।

रावण के लिए भी वही सहायता (संयोग) आ बनी है।
मंत्री उसे सुना-सुनाकर (मुँह पर) स्तुति करते हैं।

अवसर जानि बिभीषनु आवा।
भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा।।

(इसी समय) अवसर जानकर विभीषणजी आए।
उन्होंने बड़े भाई के चरणों में सिर नवाया॥

पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन।
बोला बचन पाइ अनुसासन।।

फिर से सिर नवाकर अपने आसन पर बैठ गए
और आज्ञा पाकर ये वचन बोले-

जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता।
मति अनुरुप कहउँ हित ताता।।

हे कृपाल जब आपने मुझसे बात (राय) पूछी ही है,
तो हे तात! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार आपके हित की बात कहता हूँ-॥

जो आपन चाहै कल्याना।
सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।।

जो मनुष्य अपना कल्याण,
सुंदर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकार के सुख चाहता हो॥

सो परनारि लिलार गोसाईं।
तजउ चउथि के चंद कि नाईं।।

वह हे स्वामी! परस्त्री के ललाट को
चौथ के चंद्रमा की तरह त्याग दे (अर्थात् जैसे लोग चौथ के चंद्रमा को नहीं देखते, उसी प्रकार
परस्त्री का मुख ही न देखे)॥

चौदह भुवन एक पति होई।
भूतद्रोह तिष्टइ नहिं सोई।।

चौदहों भुवनों का एक ही स्वामी हो,
वह भी जीवों से वैर करके ठहर नहीं सकता (नष्ट हो जाता है) ॥

गुन सागर नागर नर जोऊ।
अलप लोभ भल कहइ न कोऊ।।

जो मनुष्य गुणों का समुद्र और चतुर हो,
उसे चाहे थोड़ा भी लोभ क्यों न हो, तो भी कोई भला नहीं कहता॥

[दोहा ३८]

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत।।

हे नाथ! काम, क्रोध, मद और लोभ- ये सब नरक के रास्ते हैं,
इन सबको छोड़कर श्री रामचंद्रजी को भजिए, जिन्हें संत (सत्पुरुष) भजते हैं॥

तात राम नहिं नर भूपाला।
भुवनेस्वर कालहु कर काला।।

हे तात! राम मनुष्यों के ही राजा नहीं हैं।
वे समस्त लोकों के स्वामी और काल के भी काल हैं॥

ब्रह्म अनामय अज भगवंता।
ब्यापक अजित अनादि अनंता।।

वे (संपूर्ण ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, वैराग्य एवं ज्ञान के भंडार) भगवान् हैं,
वे निरामय (विकाररहित), अजन्मे, व्यापक, अजेय, अनादि और अनंत ब्रह्म हैं॥

गो द्विज धेनु देव हितकारी।
कृपासिंधु मानुष तनुधारी।।

उन कृपा के समुद्र भगवान् ने पृथ्वी, ब्राह्मण, गो और देवताओं का हित करने के लिए
ही मनुष्य शरीर धारण किया है॥

जन रंजन भंजन खल ब्राता।
बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता।।

हे भाई! सुनिए, वे सेवकों को आनंद देने वाले, दुष्टों के समूह का नाश करने वाले
और वेद तथा धर्म की रक्षा करने वाले हैं॥

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा।
प्रनतारति भंजन रघुनाथा।।

वैर त्यागकर उन्हें मस्तक नवाइए।
वे श्री रघुनाथजी शरणागत का दुःख नाश करने वाले हैं॥

देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही।
भजहु राम बिनु हेतु सनेही।।

हे नाथ! उन प्रभु (सर्वेश्वर) को जानकीजी दे दीजिए
और बिना ही कारण स्नेह करने वाले श्री रामजी को भजिए॥

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा।
बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा।।

जिसे संपूर्ण जगत् से द्रोह करने का पाप लगा है,
शरण जाने पर प्रभु उसका भी त्याग नहीं करते॥

जासु नाम त्रय ताप नसावन।
सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन।।

जिनका नाम तीनों तापों का नाश करने वाला है,
वे ही प्रभु (भगवान्) मनुष्य रूप में प्रकट हुए हैं। हे रावण! हृदय में यह समझ लीजिए॥

[दोहा ३९ (क), (ख)]

बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस।।

हे दशशीश! मैं बार-बार आपके चरणों लगता हूँ और विनती करता हूँ कि
मान, मोह और मद को त्यागकर आप कोसलपति श्री रामजी का भजन कीजिए॥

मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात।।

मुनि पुलस्त्यजी ने अपने शिष्य के हाथ यह बात कहला भेजी है।
हे तात! सुंदर अवसर पाकर मैंने तुरंत ही वह बात प्रभु (आप) से कह दी॥

माल्यवंत अति सचिव सयाना।
तासु बचन सुनि अति सुख माना।।

माल्यवान् नाम का एक बहुत ही बुद्धिमान मंत्री था।
उसने उन (विभीषण) के वचन सुनकर बहुत सुख माना (और कहा-) ॥

तात अनुज तव नीति बिभूषन।
सो उर धरहु जो कहत बिभीषन।।

हे तात! आपके छोटे भाई नीति विभूषण (नीति को भूषण रूप में धारण करने वाले अर्थात् नीतिमान्) हैं।
विभीषण जो कुछ कह रहे हैं उसे हृदय में धारण कर लीजिए॥

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ।
दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ।।

रावन ने कहा-ये दोनों मूर्ख शत्रु की महिमा बखान रहे हैं।
यहाँ कोई है? इन्हें दूर करो न!

माल्यवंत गृह गयउ बहोरी।
कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी।।

तब माल्यवान् तो घर लौट गया
और विभीषणजी हाथ जोड़कर फिर कहने लगे-॥

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं।।

हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि
सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) और कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सबके हृदय में रहती है॥

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।।

जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकार की संपदाएँ (सुख की स्थिति) रहती हैं
और जहाँ कुबुद्धि है वहाँ परिणाम में विपत्ति (दुःख) रहती है॥

तव उर कुमति बसी बिपरीता।
हित अनहित मानहु रिपु प्रीता।।

आपके हृदय में उलटी बुद्धि आ बसी है।
इसी से आप हित को अहित और शत्रु को मित्र मान रहे हैं॥

कालराति निसिचर कुल केरी।
तेहि सीता पर प्रीति घनेरी।।

जो राक्षस कुल के लिए कालरात्रि (के समान) हैं,
उन सीता पर आपकी बड़ी प्रीति है॥

[दोहा ४०]

तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीत देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार।।

हे तात! मैं चरण पकड़कर आपसे भीख माँगता हूँ (विनती करता हूँ)।
कि आप मेरा दुलार रखिए (मुझ बालक के आग्रह को स्नेहपूर्वक स्वीकार कीजिए)
श्री रामजी को सीताजी दे दीजिए, जिसमें आपका अहित न हो॥

बुध पुरान श्रुति संमत बानी।
कही बिभीषन नीति बखानी।।

विभीषण ने पंडितों, पुराणों और वेदों द्वारा सम्मत (अनुमोदित)
वाणी से नीति बखानकर कही॥

सुनत दसानन उठा रिसाई।
खल तोहि निकट मृत्यु अब आई।।

पर उसे सुनते ही रावण क्रोधित होकर उठा
और बोला कि रे दुष्ट! अब मृत्यु तेरे निकट आ गई है!॥

जिअसि सदा सठ मोर जिआवा।
रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा।।

अरे मूर्ख! तू जीता तो है सदा मेरा जिलाया हुआ (अर्थात् मेरे ही अन्न से पल रहा है),
पर हे मूढ़! पक्ष तुझे शत्रु का ही अच्छा लगता है॥

कहसि न खल अस को जग माहीं।
भुज बल जाहि जिता मैं नाही।।

अरे दुष्ट! बता न, जगत् में ऐसा कौन है
जिसे मैंने अपनी भुजाओं के बल से न जीता हो?॥

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती।
सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती।।

मेरे नगर में रहकर प्रेम करता है तपस्वियों पर।
मूर्ख! उन्हीं से जा मिल और उन्हीं को नीति बता।

अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा।
अनुज गहे पद बारहिं बारा।।

ऐसा कहकर रावण ने उन्हें लात मारी,
परंतु छोटे भाई विभीषण ने (मारने पर भी) बार-बार उसके चरण ही पकड़े॥

उमा संत कइ इहइ बड़ाई।
मंद करत जो करइ भलाई।।

शिवजी कहते हैं-हे उमा! संत की यही बड़ाई (महिमा) है कि
वे बुराई करने पर भी (बुराई करने वाले की) भलाई ही करते हैं॥

तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा।
रामु भजें हित नाथ तुम्हारा।।

विभीषणजी ने कहा-आप मेरे पिता के समान हैं, मुझे मारा सो तो अच्छा ही किया,
परंतु हे नाथ! आपका भला श्री रामजी को भजने में ही है॥

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ।
सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ।।

(इतना कहकर) विभीषण अपने मंत्रियों को साथ लेकर आकाश मार्ग में गए
और सबको सुनाकर वे ऐसा कहने लगे-॥

[दोहा ४१]

रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मै रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि।।

श्री रामजी सत्य संकल्प एवं (सर्वसमर्थ) प्रभु हैं और (हे रावण) तुम्हारी सभा काल के वश है।
अतः मैं अब श्री रघुवीर की शरण जाता हूँ, मुझे दोष न देना॥

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं।
आयूहीन भए सब तबहीं।।

ऐसा कहकर विभीषणजी ज्यों ही चले,
त्यों ही सब राक्षस आयुहीन हो गए। (उनकी मृत्यु निश्चित हो गई)।

साधु अवग्या तुरत भवानी।
कर कल्यान अखिल कै हानी।।

शिवजी कहते हैं- हे भवानी! साधु का अपमान
तुरंत ही संपूर्ण कल्याण की हानि (नाश) कर देता है॥

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा।
भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा।।

रावण ने जिस क्षण विभीषण को त्यागा,
उसी क्षण वह अभागा वैभव (ऐश्वर्य) से हीन हो गया।

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं।
करत मनोरथ बहु मन माहीं।।

विभीषणजी हर्षित होकर
मन में अनेकों मनोरथ करते हुए श्री रघुनाथजी के पास चले॥

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता।
अरुन मृदुल सेवक सुखदाता।।

वे सोचते जाते थे- मैं जाकर भगवान् के कोमल और लाल वर्ण के सुंदर चरण कमलों के दर्शन करूँगा,
जो सेवकों को सुख देने वाले हैं॥

जे पद परसि तरी रिषिनारी।
दंडक कानन पावनकारी।।

जिन चरणों का स्पर्श पाकर ऋषि पत्नी अहल्या तर गईं
और जो दंडकवन को पवित्र करने वाले हैं॥

जे पद जनकसुताँ उर लाए।
कपट कुरंग संग धर धाए।।

जिन चरणों को जानकीजी ने हृदय में धारण कर रखा है,
जो कपटमृग के साथ पृथ्वी पर (उसे पकड़ने को) दौड़े थे॥

हर उर सर सरोज पद जेई।
अहोभाग्य मै देखिहउँ तेई।।

और जो चरणकमल साक्षात् शिवजी के हृदय रूपी सरोवर में विराजते हैं,
मेरा अहोभाग्य है कि उन्हीं को आज मैं देखूँगा॥

[दोहा ४२]

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ।।

जिन चरणों की पादुकाओं में भरतजी ने अपना मन लगा रखा है,
अहा! आज मैं उन्हीं चरणों को अभी जाकर इन नेत्रों से देखूँगा॥

एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा।
आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा।।

इस प्रकार प्रेमसहित विचार करते हुए
वे शीघ्र ही समुद्र के इस पार (जिधर श्री रामचंद्रजी की सेना थी) आ गए।

कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा।
जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा।।

वानरों ने विभीषण को आते देखा
तो उन्होंने जाना कि शत्रु का कोई खास दूत है॥

ताहि राखि कपीस पहिं आए।
समाचार सब ताहि सुनाए।।

उन्हें (पहरे पर) ठहराकर वे सुग्रीव के पास आए
और उनको सब समाचार कह सुनाए।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई।
आवा मिलन दसानन भाई।।

सुग्रीव ने (श्री रामजी के पास जाकर) कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए,
रावण का भाई (आप से) मिलने आया है॥

कह प्रभु सखा बूझिऐ काहा।
कहइ कपीस सुनहु नरनाहा।।

प्रभु श्री रामजी ने कहा- हे मित्र!
तुम क्या समझते हो (तुम्हारी क्या राय है)?

जानि न जाइ निसाचर माया।
कामरूप केहि कारन आया।।

वानरराज सुग्रीव ने कहा- हे महाराज! सुनिए, राक्षसों की माया जानी नहीं जाती।
यह इच्छानुसार रूप बदलने वाला (छली) न जाने किस कारण आया है॥

भेद हमार लेन सठ आवा।
राखिअ बाँधि मोहि अस भावा।।

(जान पड़ता है) यह मूर्ख हमारा भेद लेने आया है,
इसलिए मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँध रखा जाए।

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी।
मम पन सरनागत भयहारी।।

श्री रामजी ने कहा-हे मित्र! तुमने नीति तो अच्छी विचारी,
परंतु मेरा प्रण तो है शरणागत के भय को हर लेना!॥

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना।
सरनागत बच्छल भगवाना।।

प्रभु के वचन सुनकर हनुमान्जी हर्षित हुए (और मन ही मन कहने लगे कि)
भगवान् कैसे शरणागतवत्सल (शरण में आए हुए पर पिता की भाँति प्रेम करने वाले) हैं॥

[दोहा ४३]

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि।।

श्री रामजी फिर बोले- जो मनुष्य अपने अहित का अनुमान करके शरण में आए हुए का त्याग कर देते हैं,
वे पामर (क्षुद्र) हैं, पापमय हैं, उन्हें देखने में भी हानि है (पाप लगता है)॥

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू।
आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू।।

जिसे करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या लगी हो,
शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है,
त्यों ही उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं॥

पापवंत कर सहज सुभाऊ।
भजनु मोर तेहि भाव न काऊ।।

पापी का यह सहज स्वभाव होता है कि
मेरा भजन उसे कभी नहीं सुहाता।

जौं पै दुष्टहदय सोइ होई।
मोरें सनमुख आव कि सोई।।

यदि वह (रावण का भाई) निश्चय ही दुष्ट हृदय का होता
तो क्या वह मेरे सम्मुख आ सकता था?॥

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

जो मनुष्य निर्मल मन का होता है, वही मुझे पाता है।
मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते।

भेद लेन पठवा दससीसा।
तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा।।

यदि उसे रावण ने भेद लेने को भेजा है,
तब भी हे सुग्रीव! अपने को कुछ भी भय या हानि नहीं है॥

जग महुँ सखा निसाचर जेते।
लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते।।

क्योंकि हे सखे! जगत में जितने भी राक्षस हैं,
लक्ष्मण क्षणभर में उन सबको मार सकते हैं॥

जौं सभीत आवा सरनाई।
रखिहउँ ताहि प्रान की नाई।।

और यदि वह भयभीत होकर मेरी शरण आया है
तो मैं तो उसे प्राणों की तरह रखूँगा॥

[दोहा ४४]

उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि चले अंगद हनू समेत।।

कृपा के धाम श्री रामजी ने हँसकर कहा- दोनों ही स्थितियों में उसे ले आओ।
तब अंगद और हनुमान् सहित सुग्रीवजी 'कपालु श्री रामजी की जय हो' कहते हुए चले॥

सादर तेहि आगें करि बानर।
चले जहाँ रघुपति करुनाकर।।

विभीषणजी को आदर सहित आगे करके वानर फिर वहाँ चले,
जहाँ करुणा की खान श्री रघुनाथजी थे।

दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता।
नयनानंद दान के दाता।।

नेत्रों को आनंद का दान देने वाले (अत्यंत सुखद)
दोनों भाइयों को विभीषणजी ने दूर ही से देखा॥

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी।
रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी।।

फिर शोभा के धाम श्री रामजी को देखकर वे पलक (मारना)
रोककर ठिठककर (स्तब्ध होकर) एकटक देखते ही रह गए।

भुज प्रलंब कंजारुन लोचन।
स्यामल गात प्रनत भय मोचन।।

भगवान् की विशाल भुजाएँ हैं लाल कमल के समान नेत्र हैं
और शरणागत के भय का नाश करने वाला साँवला शरीर है॥

सिंघ कंध आयत उर सोहा।
आनन अमित मदन मन मोहा।।

सिंह के से कंधे हैं, विशाल वक्षःस्थल (चौड़ी छाती) अत्यंत शोभा दे रहा है।
असंख्य कामदेवों के मन को मोहित करने वाला मुख है।

नयन नीर पुलकित अति गाता।
मन धरि धीर कही मृदु बाता।।

भगवान् के स्वरूप को देखकर विभीषणजी के नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया और
शरीर अत्यंत पुलकित हो गया।
फिर मन में धीरज धरकर उन्होंने कोमल वचन कहे॥

नाथ दसानन कर मैं भ्राता।
निसिचर बंस जनम सुरत्राता।।

हे नाथ! मैं दशमुख रावण का भाई हूँ।
हे देवताओं के रक्षक! मेरा जन्म राक्षस कुल में हुआ है।

सहज पापप्रिय तामस देहा।
जथा उलूकहि तम पर नेहा।।

मेरा तामसी शरीर है, स्वभाव से ही मुझे पाप प्रिय हैं,
जैसे उल्लू को अंधकार पर सहज स्नेह होता है॥

[दोहा ४५]

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर।।

मैं कानों से आपका सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु भव (जन्म-मरण) के भय का नाश करने वाले हैं।
हे दुखियों के दुःख दूर करने वाले और शरणागत को सुख देने वाले श्री रघुवीर! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए॥

अस कहि करत दंडवत देखा।
तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा।।

प्रभु ने उन्हें ऐसा कहकर दंडवत् करते देखा
तो वे अत्यंत हर्षित होकर तुरंत उठे।

दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा।
भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा।।

विभीषणजी के दीन वचन सुनने पर प्रभु के मन को बहुत ही भाए।
उन्होंने अपनी विशाल भुजाओं से पकड़कर उनको हृदय से लगा लिया॥

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी।
बोले बचन भगत भयहारी।।

छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित गले मिलकर उनको अपने पास बैठाकर
श्री रामजी भक्तों के भय को हरने वाले वचन बोले-॥

कहु लंकेस सहित परिवारा।
कुसल कुठाहर बास तुम्हारा।।

हे लंकेश! परिवार सहित अपनी कुशल कहो।
तुम्हारा निवास बुरी जगह पर है॥

खल मंडलीं बसहु दिनु राती।
सखा धरम निबहइ केहि भाँती।।

-दिन-रात दुष्टों की मंडली में बसते हो।
(ऐसी दशा में) हे सखे! तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभता है?

मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती।
अति नय निपुन न भाव अनीती।।

मैं तुम्हारी सब रीति (आचार-व्यवहार) जानता हूँ।
तुम अत्यंत नीतिनिपुण हो, तुम्हें अनीति नहीं सुहाती॥

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देइ बिधाता।।

हे तात! नरक में रहना वरन् अच्छा है,
परंतु विधाता दुष्ट का संग (कभी) न दे।

अब पद देखि कुसल रघुराया।
जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया।।

विभीषणजी ने कहा- हे रघुनाथजी! अब आपके चरणों का दर्शन कर कुशल से हूँ,
जो आपने अपना सेवक जानकर मुझ पर दया की है॥

[दोहा ४६]

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम।।

-तब तक जीव की कुशल नहीं और न स्वप्न में भी उसके मन को शांति है,
जब तक वह शोक के घर काम (विषय-कामना) को छोड़कर श्री रामजी को नहीं भजता॥

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना।
लोभ मोह मच्छर मद माना।।

लोभ, मोह, मत्सर (डाह), मद और मान आदि
अनेकों दुष्ट तभी तक हृदय में बसते हैं॥

जब लगि उर न बसत रघुनाथा।
धरें चाप सायक कटि भाथा।।

जब तक कि धनुष-बाण और कमर में तरकस धारण किए हुए
श्री रघुनाथजी हृदय में नहीं बसते॥

ममता तरुन तमी अँधिआरी।
राग द्वेष उलूक सुखकारी।।

ममता पूर्ण अँधेरी रात है,
जो राग-द्वेष रूपी उल्लुओं को सुख देने वाली है।

तब लगि बसति जीव मन माहीं।
जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं।।

वह (ममता रूपी रात्रि) तभी तक जीव के मन में बसती है,
जब तक प्रभु (आप) का प्रताप रूपी सूर्य उदय नहीं होता॥

अब मैं कुसल मिटे भय भारे।
देखि राम पद कमल तुम्हारे।।

हे श्री रामजी! आपके चरणारविन्द के दर्शन कर अब मैं कुशल से हूँ,
मेरे भारी भय मिट गए।

तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला।
ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला।।

हे कृपालु! आप जिस पर अनुकूल होते हैं,
उसे तीनों प्रकार के भवशूल (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप) नहीं व्यापते॥

मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ।
सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ।।

मैं अत्यंत नीच स्वभाव का राक्षस हूँ।
मैंने कभी शुभ आचरण नहीं किया।

जासु रूप मुनि ध्यान न आवा।
तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा।।

जिनका रूप मुनियों के भी ध्यान में नहीं आता,
उन प्रभु ने स्वयं हर्षित होकर मुझे हृदय से लगा लिया॥

[दोहा ४७]

अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिब सेब्य जुगल पद कंज।।

हे कृपा और सुख के पुंज श्री रामजी! मेरा अत्यंत असीम सौभाग्य है,
जो मैंने ब्रह्मा और शिवजी के द्वारा सेवित युगल चरण कमलों को अपने नेत्रों से देखा॥

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ।
जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ।।

श्री रामजी ने कहा-हे सखा! सुनो, मैं तुम्हें अपना स्वभाव कहता हूँ,
जिसे काकभुशुण्डि, शिवजी और पार्वतीजी भी जानती हैं।

जौं नर होइ चराचर द्रोही।
आवे सभय सरन तकि मोही।।

कोई मनुष्य (संपूर्ण) जड़-चेतन जगत् का द्रोही हो,
यदि वह भी भयभीत होकर मेरी शरण तक कर आ जाए,॥

तजि मद मोह कपट छल नाना।
करउँ सद्य तेहि साधु समाना।।

और मद, मोह तथा नाना प्रकार के छल-कपट त्याग दे तो
मैं उसे बहुत शीघ्र साधु के समान कर देता हूँ।

जननी जनक बंधु सुत दारा।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा।।

माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री,
शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार॥

सब कै ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहि बाँध बरि डोरी।।

इन सबके ममत्व रूपी तागों को बटोरकर और
उन सबकी एक डोरी बनाकर उसके द्वारा जो अपने मन को मेरे चरणों में बाँध देता है।

समदरसी इच्छा कछु नाहीं।
हरष सोक भय नहिं मन माहीं।।

(सारे सांसारिक संबंधों का केंद्र मुझे बना लेता है), जो समदर्शी है, जिसे कुछ इच्छा नहीं है और
जिसके मन में हर्ष, शोक और भय नहीं है॥

अस सज्जन मम उर बस कैसें।
लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें।।

ऐसा सज्जन मेरे हृदय में कैसे बसता है,
जैसे लोभी के हृदय में धन बसा करता है॥

तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें।
धरउँ देह नहिं आन निहोरें।।

तुम सरीखे संत ही मुझे प्रिय हैं।
मैं और किसी के निहोरे से (कृतज्ञतावश) देह धारण नहीं करता॥

[दोहा ४८]

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम।।

जो सगुण (साकार) भगवान् के उपासक हैं, दूसरे के हित में लगे रहते हैं,
नीति और नियमों में दृढ़ हैं और जिन्हें ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम है, वे मनुष्य मेरे प्राणों के समान हैं॥

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें।
तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें।।

हे लंकापति! सुनो, तुम्हारे अंदर उपर्युक्त सब गुण हैं।
इससे तुम मुझे अत्यंत ही प्रिय हो।

राम बचन सुनि बानर जूथा।
सकल कहहिं जय कृपा बरूथा।।

श्री रामजी के वचन सुनकर सब वानरों के समूह कहने लगे-
कृपा के समूह श्री रामजी की जय हो॥

सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी।
नहिं अघात श्रवनामृत जानी।।

प्रभु की वाणी सुनते हैं और
उसे कानों के लिए अमृत जानकर विभीषणजी अघाते नहीं हैं।

पद अंबुज गहि बारहिं बारा।
हृदयँ समात न प्रेमु अपारा।।

वे बार-बार श्री रामजी के चरण कमलों को पकड़ते हैं
अपार प्रेम है, हृदय में समाता नहीं है॥

सुनहु देव सचराचर स्वामी।
प्रनतपाल उर अंतरजामी।।

विभीषणजी ने कहा-हे देव! हे चराचर जगत्‌ के स्वामी! हे शरणागत के रक्षक!
हे सबके हृदय के भीतर की जानने वाले!

उर कछु प्रथम बासना रही।
प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।।

सुनिए, मेरे हृदय में पहले कुछ वासना थी।
वह प्रभु के चरणों की प्रीति रूपी नदी में बह गई॥

अब कृपाल निज भगति पावनी।
देहु सदा सिव मन भावनी।।

अब तो हे कृपालु! शिवजी के मन को सदैव प्रिय लगने वाली
अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिए।

एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा।
मागा तुरत सिंधु कर नीरा।।

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर रणधीर प्रभु श्री रामजी ने
तुरंत ही समुद्र का जल माँगा॥

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं।
मोर दरसु अमोघ जग माहीं।।

और कहा-हे सखा! यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है,
पर जगत् में मेरा दर्शन अमोघ है (वह निष्फल नहीं जाता)।

अस कहि राम तिलक तेहि सारा।
सुमन बृष्टि नभ भई अपारा।।

ऐसा कहकर श्री रामजी ने उनको राजतिलक कर दिया।
आकाश से पुष्पों की अपार वृष्टि हुई॥

[दोहा ४९ (क), (ख)]

रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड।।

श्री रामजी ने रावण की क्रोध रूपी अग्नि में, जो अपनी (विभीषण की) श्वास (वचन) रूपी पवन से प्रचंड हो रही थी,
जलते हुए विभीषण को बचा लिया और उसे अखंड राज्य दिया॥

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ।।

शिवजी ने जो संपत्ति रावण को दसों सिरों की बलि देने पर दी थी,
वही संपत्ति श्री रघुनाथजी ने विभीषण को बहुत सकुचते हुए दी॥

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना।
ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना।।

ऐसे परम कृपालु प्रभु को छोड़कर जो मनुष्य दूसरे को भजते हैं,
वे बिना सींग-पूँछ के पशु हैं।

निज जन जानि ताहि अपनावा।
प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा।।

अपना सेवक जानकर विभीषण को श्री रामजी ने अपना लिया।
प्रभु का स्वभाव वानरकुल के मन को (बहुत) भाया॥

पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी।
सर्बरूप सब रहित उदासी।।

फिर सब कुछ जानने वाले, सबके हृदय में बसने वाले,
सर्वरूप (सब रूपों में प्रकट), सबसे रहित, उदासीन॥

बोले बचन नीति प्रतिपालक।
कारन मनुज दनुज कुल घालक।।

कारण से (भक्तों पर कृपा करने के लिए) मनुष्य बने हुए तथा राक्षसों के कुल का नाश करने वाले
श्री रामजी नीति की रक्षा करने वाले वचन बोले-॥

सुनु कपीस लंकापति बीरा।
केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा।।

हे वीर वानरराज सुग्रीव और लंकापति विभीषण! सुनो,
इस गहरे समुद्र को किस प्रकार पार किया जाए?

संकुल मकर उरग झष जाती।
अति अगाध दुस्तर सब भाँती।।

अनेक जाति के मगर, साँप और मछलियों से भरा हुआ
यह अत्यंत अथाह समुद्र पार करने में सब प्रकार से कठिन है॥

कह लंकेस सुनहु रघुनायक।
कोटि सिंधु सोषक तव सायक।।

विभीषणजी ने कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए, यद्यपि आपका एक बाण ही
करोड़ों समुद्रों को सोखने वाला है (सोख सकता है)॥

जद्यपि तदपि नीति असि गाई।
बिनय करिअ सागर सन जाई।।

थापि नीति ऐसी कही गई है (उचित यह होगा) कि
(पहले) जाकर समुद्र से प््रार्थना की जाए॥

[दोहा ५०]

प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि।।

हे प्रभु! समुद्र आपके कुल में बड़े (पूर्वज) हैं, वे विचारकर उपाय बतला देंगे।
तब रीछ और वानरों की सारी सेना बिना ही परिश्रम के समुद्र के पार उतर जाएगी॥

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई।
करिअ दैव जौं होइ सहाई।।

श्री रामजी ने कहा- हे सखा! तुमने अच्छा उपाय बताया।
यही किया जाए, यदि दैव सहायक हों।

मंत्र न यह लछिमन मन भावा।
राम बचन सुनि अति दुख पावा।।

यह सलाह लक्ष्मणजी के मन को अच्छी नहीं लगी।
श्री रामजी के वचन सुनकर तो उन्होंने बहुत ही दुःख पाया॥

नाथ दैव कर कवन भरोसा।
सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा।।

लक्ष्मणजी ने कहा- हे नाथ! दैव का कौन भरोसा!
मन में क्रोध कीजिए (ले आइए) और समुद्र को सुखा डालिए।

कादर मन कहुँ एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा।।

यह दैव तो कायर के मन का एक आधार (तसल्ली देने का उपाय) है।
आलसी लोग ही दैव-दैव पुकारा करते हैं॥

सुनत बिहसि बोले रघुबीरा।
ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा।।

यह सुनकर श्री रघुवीर हँसकर बोले-
ऐसे ही करेंगे, मन में धीरज रखो।

अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई।
सिंधु समीप गए रघुराई।।

ऐसा कहकर छोटे भाई को समझाकर
प्रभु श्री रघुनाथजी समुद्र के समीप गए॥

प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई।
बैठे पुनि तट दर्भ डसाई।।

उन्होंने पहले सिर नवाकर प्रणाम किया।
फिर किनारे पर कुश बिछाकर बैठ गए।

जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए।
पाछें रावन दूत पठाए।।

इधर ज्यों ही विभीषणजी प्रभु के पास आए थे,
त्यों ही रावण ने उनके पीछे दूत भेजे थे॥

[दोहा ५१]

सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह।।

कपट से वानर का शरीर धारण कर उन्होंने सब लीलाएँ देखीं।
वे अपने हृदय में प्रभु के गुणों की और शरणागत पर उनके स्नेह की सराहना करने लगे॥

प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ।
अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ।।

फिर वे प्रकट रूप में भी अत्यंत प्रेम के साथ
श्री रामजी के स्वभाव की बड़ाई करने लगे उन्हें दुराव (कपट वेश) भूल गया।

रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने।
सकल बाँधि कपीस पहिं आने।।

सब वानरों ने जाना कि ये शत्रु के दूत हैं
और वे उन सबको बाँधकर सुग्रीव के पास ले आए॥

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर।
अंग भंग करि पठवहु निसिचर।।

सुग्रीव ने कहा- सब वानरों!
सुनो, राक्षसों के अंग-भंग करके भेज दो।

सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए।
बाँधि कटक चहु पास फिराए।।

ग्रीव के वचन सुनकर वानर दौड़े।
दूतों को बाँधकर उन्होंने सेना के चारों ओर घुमाया॥

बहु प्रकार मारन कपि लागे।
दीन पुकारत तदपि न त्यागे।।

वानर उन्हें बहुत तरह से मारने लगे।
वे दीन होकर पुकारते थे, फिर भी वानरों ने उन्हें नहीं छोड़ा।

जो हमार हर नासा काना।
तेहि कोसलाधीस कै आना।।

तब दूतों ने पुकारकर कहा- जो हमारे नाक-कान काटेगा,
उसे कोसलाधीश श्री रामजी की सौगंध है॥

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए।
दया लागि हँसि तुरत छोडाए।।

यह सुनकर लक्ष्मणजी ने सबको निकट बुलाया।
उन्हें बड़ी दया लगी, इससे हँसकर उन्होंने राक्षसों को तुरंत ही छुड़ा दिया।

रावन कर दीजहु यह पाती।
लछिमन बचन बाचु कुलघाती।।

और उनसे कहा-रावण के हाथ में यह चिट्ठी देना (और कहना-)
हे कुलघातक! लक्ष्मण के शब्दों (संदेसे) को बाँचो॥

[दोहा ५२]

कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार।
सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार।।

फिर उस मूर्ख से जबानी यह मेरा उदार (कृपा से भरा हुआ) संदेश कहना कि
सीताजी को देकर उनसे (श्री रामजी से) मिलो, नहीं तो तुम्हारा काल आ गया (समझो)॥

तुरत नाइ लछिमन पद माथा।
चले दूत बरनत गुन गाथा।।

लक्ष्मणजी के चरणों में मस्तक नवाकर,
श्री रामजी के गुणों की कथा वर्णन करते हुए दूत तुरंत ही चल दिए।

कहत राम जसु लंकाँ आए।
रावन चरन सीस तिन्ह नाए।।

श्री रामजी का यश कहते हुए वे लंका में आए
और उन्होंने रावण के चरणों में सिर नवाए॥

बिहसि दसानन पूँछी बाता।
कहसि न सुक आपनि कुसलाता।।

दशमुख रावण ने हँसकर बात पूछी- अरे शुक
! अपनी कुशल क्यों नहीं कहता?

पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी।
जाहि मृत्यु आई अति नेरी।।

फिर उस विभीषण का समाचार सुना,
मृत्यु जिसके अत्यंत निकट आ गई है॥

करत राज लंका सठ त्यागी।
होइहि जब कर कीट अभागी।।

मूर्ख ने राज्य करते हुए लंका को त्याग दिया।
अभागा अब जौ का कीड़ा (घुन) बनेगा (जौ के साथ जैसे घुन भी पिस जाता है,
वैसे ही नर वानरों के साथ वह भी मारा जाएगा)॥

पुनि कहु भालु कीस कटकाई।
कठिन काल प्रेरित चलि आई।।

फिर भालु और वानरों की सेना का हाल कह,
जो कठिन काल की प्रेरणा से यहाँ चली आई है॥

जिन्ह के जीवन कर रखवारा।
भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा।।

और जिनके जीवन का रक्षक कोमल चित्त वाला बेचारा समुद्र बन गया है (अर्थात्) उनके और राक्षसों के बीच में यदि समुद्र न होता तो अब तक राक्षस उन्हें मारकर खा गए होते।

कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी।
जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी।।

फिर उन तपस्वियों की बात बता,
जिनके हृदय में मेरा बड़ा डर है॥

[दोहा ५३]

की भइ भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर।।

उनसे तेरी भेंट हुई या वे कानों से मेरा सुयश सुनकर ही लौट गए?
शत्रु सेना का तेज और बल बताता क्यों नहीं? तेरा चित्त बहुत ही चकित (भौंचक्का सा) हो रहा है॥

नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें।
मानहु कहा क्रोध तजि तैसें।।

दूत ने कहा- हे नाथ! आपने जैसे कृपा करके पूछा है,
वैसे ही क्रोध छोड़कर मेरा कहना मानिए (मेरी बात पर विश्वास कीजिए)।

मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा।
जातहिं राम तिलक तेहि सारा।।

जब आपका छोटा भाई श्री रामजी से जाकर मिला
, तब उसके पहुँचते ही श्री रामजी ने उसको राजतिलक कर दिया॥

रावन दूत हमहि सुनि काना।
कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना।।

हम रावण के दूत हैं, यह कानों से सुनकर
वानरों ने हमें बाँधकर बहुत कष्ट दिए॥

श्रवन नासिका काटै लागे।
राम सपथ दीन्हे हम त्यागे।।

यहाँ तक कि वे हमारे नाक-कान काटने लगे।
श्री रामजी की शपथ दिलाने पर कहीं उन्होंने हमको छोड़ा॥

पूँछिहु नाथ राम कटकाई।
बदन कोटि सत बरनि न जाई।।

हे नाथ! आपने श्री रामजी की सेना पूछी,
सो वह तो सौ करोड़ मुखों से भी वर्णन नहीं की जा सकती।

नाना बरन भालु कपि धारी।
बिकटानन बिसाल भयकारी।।

अनेकों रंगों के भालु और वानरों की सेना है,
जो भयंकर मुख वाले, विशाल शरीर वाले और भयानक हैं॥

जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा।
सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा।।

जिसने नगर को जलाया और आपके पुत्र अक्षय कुमार को मारा,
उसका बल तो सब वानरों में थोड़ा है।

अमित नाम भट कठिन कराला।
अमित नाग बल बिपुल बिसाला।।

असंख्य नामों वाले बड़े ही कठोर और भयंकर योद्धा हैं।
उनमें असंख्य हाथियों का बल है और वे बड़े ही विशाल हैं॥

[दोहा ५४]

द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि।।

द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गद, विकटास्य,
दधिमुख, केसरी, निशठ, शठ और जाम्बवान् ये सभी बल की राशि हैं॥

ए कपि सब सुग्रीव समाना।
इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना।।

ये सब वानर बल में सुग्रीव के समान हैं
और इनके जैसे (एक-दो नहीं) करोड़ों हैं, उन बहुत सो को गिन ही कौन सकता है।

राम कृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं।
तृन समान त्रैलोकहि गनहीं।।

श्री रामजी की कृपा से उनमें अतुलनीय बल है।
वे तीनों लोकों को तृण के समान (तुच्छ) समझते हैं॥

अस मैं सुना श्रवन दसकंधर।
पदुम अठारह जूथप बंदर।।

हे दशग्रीव! मैंने कानों से ऐसा सुना है कि
अठारह पद्म तो अकेले वानरों के सेनापति हैं।

नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं।
जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं।।

हे नाथ! उस सेना में ऐसा कोई वानर नहीं है,
जो आपको रण में न जीत सके॥

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा।
आयसु पै न देहिं रघुनाथा।।

सब के सब अत्यंत क्रोध से हाथ मीजते हैं।
पर श्री रघुनाथजी उन्हें आज्ञा नहीं देते।

सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला।
पूरहीं न त भरि कुधर बिसाला।।

हम मछलियों और साँपों सहित समुद्र को सोख लेंगे।
नहीं तो बड़े-बड़े पर्वतों से उसे भरकर पूर (पाट) देंगे॥

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा।
ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा।।

और रावण को मसलकर धूल में मिला देंगे।
सब वानर ऐसे ही वचन कह रहे हैं।

गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका।
मानहु ग्रसन चहत हहिं लंका।।

सब सहज ही निडर हैं, इस प्रकार गरजते और डपटते हैं
मानो लंका को निगल ही जाना चाहते हैं॥

[दोहा ५५]

सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहु जीति सकहिं संग्राम।।

सब वानर-भालू सहज ही शूरवीर हैं फिर उनके सिर पर प्रभु (सर्वेश्वर) श्री रामजी हैं।
हे रावण! वे संग्राम में करोड़ों कालों को जीत सकते हैं॥

राम तेज बल बुधि बिपुलाई।
सेष सहस सत सकहिं न गाई।।

श्री रामचंद्रजी के तेज (सामर्थ्य), बल और बुद्धि की
अधिकता को लाखों शेष भी नहीं गा सकते।

सक सर एक सोषि सत सागर।
तव भ्रातहि पूँछेउ नय नागर

वे एक ही बाण से सैकड़ों समुद्रों को सोख सकते हैं,
परंतु नीति निपुण श्री रामजी ने (नीति की रक्षा के लिए) आपके भाई से उपाय पूछा॥

तासु बचन सुनि सागर पाहीं।
मागत पंथ कृपा मन माहीं।।

उनके (आपके भाई के) वचन सुनकर वे (श्री रामजी) समुद्र से राह माँग रहे हैं,
उनके मन में कृपा भी है (इसलिए वे उसे सोखते नहीं)।

सुनत बचन बिहसा दससीसा।
जौं असि मति सहाय कृत कीसा।।

दूत के ये वचन सुनते ही रावण खूब हँसा (और बोला-)
जब ऐसी बुद्धि है, तभी तो वानरों को सहायक बनाया है!

सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई।
सागर सन ठानी मचलाई।।

स्वाभाविक ही डरपोक विभीषण के वचन को प्रमाण करके
उन्होंने समुद्र से मचलना (बालहठ) ठाना है।

मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई।
रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई।।

अरे मूर्ख! झूठी बड़ाई क्या करता है?
बस, मैंने शत्रु (राम) के बल और बुद्धि की थाह पा ली॥

सचिव सभीत बिभीषन जाकें।
बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें।।

जिसके विभीषण-जैसा डरपोक मन्त्री हो,
उसे जगतमें विजय और विभूति (ऐश्वर्य) कहाँ?

सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी।
समय बिचारि पत्रिका काढ़ी।।

दुष्ट रावणके वचन सुनकर दूतको क्रोध बढ़ आया |
उसने मौका समझकर पत्रिका निकाली॥

रामानुज दीन्ही यह पाती।
नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती।।

और कहा-श्री रामजी के छोटे भाई लक्ष्मण ने यह पत्रिका दी है।
हे नाथ! इसे बचवाकर छाती ठंडी कीजिए।

बिहसि बाम कर लीन्ही रावन।
सचिव बोलि सठ लाग बचावन।।

रावण ने हँसकर उसे बाएँ हाथ से लिया
और मंत्री को बुलवाकर वह मूर्ख उसे बँचाने लगा॥

[दोहा ५६ (क), (ख)]

बातन्ह मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस।।

पत्रिका में लिखा था- अरे मूर्ख! केवल बातों से ही मन को रिझाकर अपने कुल को नष्ट-भ्रष्ट न कर।
श्री रामजी से विरोध करके तू विष्णु, ब्रह्मा और महेश की शरण जाने पर भी नहीं बचेगा॥

की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग।।

या तो अभिमान छोड़कर अपने छोटे भाई विभीषण की भाँति प्रभु के चरण कमलों का भ्रमर बन जा।
अथवा रे दुष्ट! श्री रामजी के बाण रूपी अग्नि में परिवार सहित पतिंगा हो जा (दोनों में से जो अच्छा लगे सो कर)॥

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई।
कहत दसानन सबहि सुनाई।।

पत्रिका सुनते ही रावण मन में भयभीत हो गया,
परंतु मुख से (ऊपर से) मुस्कुराता हुआ वह सबको सुनाकर कहने लगा-॥

भूमि परा कर गहत अकासा।
लघु तापस कर बाग बिलासा।।

जैसे कोई पृथ्वी पर पड़ा हुआ हाथ से आकाश को पकड़ने की चेष्टा करता हो,
वैसे ही यह छोटा तपस्वी (लक्ष्मण) वाग्विलास करता है (डींग हाँकता है)॥

कह सुक नाथ सत्य सब बानी।
समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी।।

शुक (दूत) ने कहा- हे नाथ! अभिमानी स्वभाव को छोड़कर
(इस पत्र में लिखी) सब बातों को सत्य समझिए।

सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा।
नाथ राम सन तजहु बिरोधा।।

क्रोध छोड़कर मेरा वचन सुनिए।
हे नाथ! श्री रामजी से वैर त्याग दीजिए॥

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ।
जद्यपि अखिल लोक कर राऊ।।

यद्यपि श्री रघुवीर समस्त लोकों के स्वामी हैं,
पर उनका स्वभाव अत्यंत ही कोमल है।

मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही।
उर अपराध न एकउ धरिही।।

मिलते ही प्रभु आप पर कृपा करेंगे और
आपका एक भी अपराध वे हृदय में नहीं रखेंगे॥

जनकसुता रघुनाथहि दीजे।
एतना कहा मोर प्रभु कीजे।।

जानकीजी श्री रघुनाथजी को दे दीजिए।
हे प्रभु! इतना कहना मेरा कीजिए।

जब तेहिं कहा देन बैदेही।
चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही।।

जब उस (दूत) ने जानकीजी को देने के लिए कहा,
तब दुष्ट रावण ने उसको लात मारी॥

नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ।
कृपासिंधु रघुनायक जहाँ।।

वह भी (विभीषण की भाँति) चरणों में सिर नवाकर वहीं चला,
जहाँ कृपासागर श्री रघुनाथजी थे।

करि प्रनामु निज कथा सुनाई।
राम कृपाँ आपनि गति पाई।।

प्रणाम करके उसने अपनी कथा सुनाई और
श्री रामजी की कृपा से अपनी गति (मुनि का स्वरूप) पाई॥

रिषि अगस्ति कीं साप भवानी।
राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी।।

शिवजी कहते हैं- हे भवानी! वह ज्ञानी मुनि था,
अगस्त्य ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था।

बंदि राम पद बारहिं बारा।
मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा।।

बार-बार श्री रामजी के चरणों की वंदना करके
वह मुनि अपने आश्रम को चला गया॥

[दोहा ५७]

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।।

इधर तीन दिन बीत गए, किंतु जड़ समुद्र विनय नहीं मानता।
तब श्री रामजी क्रोध सहित बोले- बिना भय के प्रीति नहीं होती!

लछिमन बान सरासन आनू।
सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू।।

हे लक्ष्मण! धनुष-बाण लाओ,
मैं अग्निबाण से समुद्र को सोख डालूँ।

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती।
सहज कृपन सन सुंदर नीती।।

मूर्ख से विनय, कुटिल के साथ प्रीति,
स्वाभाविक ही कंजूस से सुंदर नीति (उदारता का उपदेश)॥

ममता रत सन ग्यान कहानी।
अति लोभी सन बिरति बखानी।।

ममता में फँसे हुए मनुष्य से ज्ञान की कथा,
अत्यंत लोभी से वैराग्य का वर्णन॥

क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा।
ऊसर बीज बएँ फल जथा।।

क्रोधी से शम (शांति) की बात और कामी से भगवान् की कथा, इनका वैसा ही फल होता है जैसा ऊसर में बीज बोने से होता है (अर्थात् ऊसर में बीज बोने की भाँति यह सब व्यर्थ जाता है)॥

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा।
यह मत लछिमन के मन भावा।।

ऐसा कहकर श्री रघुनाथजी ने धनुष चढ़ाया।
यह मत लक्ष्मणजी के मन को बहुत अच्छा लगा।

संघानेउ प्रभु बिसिख कराला।
उठी उदधि उर अंतर ज्वाला।।

प्रभु ने भयानक (अग्नि) बाण संधान किया,
जिससे समुद्र के हृदय के अंदर अग्नि की ज्वाला उठी॥

मकर उरग झष गन अकुलाने।
जरत जंतु जलनिधि जब जाने।।

मगर, साँप तथा मछलियों के समूह व्याकुल हो गए।
जब समुद्र ने जीवों को जलते जाना॥

कनक थार भरि मनि गन नाना।
बिप्र रूप आयउ तजि माना।।

तब सोने के थाल में अनेक मणियों (रत्नों) को भरकर
अभिमान छोड़कर वह ब्राह्मण के रूप में आया॥

[दोहा ५८]

काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच।।

काकभुशुण्डिजी कहते हैं-हे गरुड़जी! सुनिए, चाहे कोई करोड़ों उपाय करके सींचे, पर केला तो काटने पर ही फलता है।
नीच विनय से नहीं मानता, वह डाँटने पर ही झुकता है (रास्ते पर आता है)॥

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे।
छमहु नाथ सब अवगुन मेरे।।

समुद्र ने भयभीत होकर प्रभु के चरण पकड़कर कहा-
हे नाथ! मेरे सब अवगुण (दोष) क्षमा कीजिए।

गगन समीर अनल जल धरनी।
इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी।।

हे नाथ! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी-
इन सबकी करनी स्वभाव से ही जड़ है॥

तव प्रेरित मायाँ उपजाए।
सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए।।

आपकी प्रेरणा से माया ने इन्हें सृष्टि के लिए उत्पन्न किया है,
सब ग्रंथों ने यही गाया है।

प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई।
सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।।

जिसके लिए स्वामी की जैसी आज्ञा है,
वह उसी प्रकार से रहने में सुख पाता है॥

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही।
मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही।।

प्रभु ने अच्छा किया जो मुझे शिक्षा (दंड) दी,
किंतु मर्यादा (जीवों का स्वभाव) भी आपकी ही बनाई हुई है।

ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी।।

ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री-
ये सब शिक्षा के अधिकारी हैं॥

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई।
उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई।।

प्रभु के प्रताप से मैं सूख जाऊँगा और सेना पार उतर जाएगी,
इसमें मेरी बड़ाई नहीं है (मेरी मर्यादा नहीं रहेगी)।

प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई।
करौं सो बेगि जौ तुम्हहि सोहाई।।

तथापि प्रभु की आज्ञा अपेल है (अर्थात् आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता) ऐसा वेद गाते हैं।
अब आपको जो अच्छा लगे, मैं तुरंत वही करूँ॥

[दोहा ५९]

सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ।।

के अत्यंत विनीत वचन सुनकर कृपालु श्री रामजी ने मुस्कुराकर कहा-
हे तात! जिस प्रकार वानरों की सेना पार उतर जाए, वह उपाय बताओ॥

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई।
लरिकाई रिषि आसिष पाई।।

समुद्र ने कहा- हे नाथ! नील और नल दो वानर भाई हैं।
उन्होंने लड़कपन में ऋषि से आशीर्वाद पाया था।

तिन्ह के परस किएँ गिरि भारे।
तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे।।

उनके स्पर्श कर लेने से ही भारी-भारी पहाड़ भी
आपके प्रताप से समुद्र पर तैर जाएँगे॥

मैं पुनि उर धरि प्रभुताई।
करिहउँ बल अनुमान सहाई।।

मैं भी प्रभु की प्रभुता को हृदय में धारण कर
अपने बल के अनुसार (जहाँ तक मुझसे बन पड़ेगा) सहायता करूँगा।

एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ।
जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ।।

हे नाथ! इस प्रकार समुद्र को बँधाइए,
जिससे तीनों लोकों में आपका सुंदर यश गाया जाए॥

एहिं सर मम उत्तर तट बासी।
हतहु नाथ खल नर अघ रासी।।

इस बाण से मेरे उत्तर तट पर रहने वाले
पाप के राशि दुष्ट मनुष्यों का वध कीजिए।

सुनि कृपाल सागर मन पीरा।
तुरतहिं हरी राम रनधीरा।।

कृपालु और रणधीर श्री रामजी ने समुद्र के मन की पीड़ा सुनकर
उसे तुरंत ही हर लिया (अर्थात् बाण से उन दुष्टों का वध कर दिया)॥

देखि राम बल पौरुष भारी।
हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी।।

श्री रामजी का भारी बल और पौरुष देखकर
समुद्र हर्षित होकर सुखी हो गया।

सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा।
चरन बंदि पाथोधि सिधावा।।

उसने उन दुष्टों का सारा चरित्र प्रभु को कह सुनाया।
फिर चरणों की वंदना करके समुद्र चला गया॥

छं० - निज भवन गवनेउ सिंधु
श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।

समुद्र अपने घर चला गया,
श्री रघुनाथजी को यह मत (उसकी सलाह) अच्छा लगा॥

यह चरित कलि मलहर जथामति
दास तुलसी गायऊ।।

यह चरित्र कलियुग के पापों को हरने वाला है,
इसे तुलसीदास ने अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है॥

सुख भवन संसय समन दवन
बिषाद रघुपति गुन गना।।

श्री रघुनाथजी के गुण समूह सुख के धाम, संदेह का नाश करने वाले
और विषाद का दमन करने वाले हैं॥

तजि सकल आस भरोस गावहि
सुनहि संतत सठ मना।।

अरे मूर्ख मन! तू संसार का सब आशा-भरोसा त्यागकर
निरंतर इन्हें गा और सुन॥

[दोहा ६०]

सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान।।

श्री रघुनाथजी का गुणगान संपूर्ण सुंदर मंगलों का देने वाला है।
जो इसे आदर सहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाज (अन्य साधन) के ही भवसागर को तर जाएँगे॥

मासपारायण, चौबीसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे
सकलकलिकलुषविध्वंसने
पञ्चमः सोपानः समाप्तः ।

कलियुग के समस्त पापो का नाश करने वाले
श्री रामचरित मानस का यह पाँचवाँ सोपान समाप्त हुआ।